अमृत वचन

॥ श्रीहरि: ॥

निवेदन

महापुरुषोंने जिस तत्त्वको, आनन्दको प्राप्त कर लिया है उस आनन्दकी प्राप्ति सभी भाई-बहिनोंको हो जाय, ऐसा उनका स्वाभाविक प्रयास रहता है। उसी बातको लक्ष्यमें रखकर उनकी सभी चेष्टाएँ होती हैं। इस बातकी उन्हें धुन सवार हो जाती है। उनके मनमें यही लगन रहती है कि किस प्रकार मनुष्योंका व्यवहार सात्त्विक हो, स्वार्थरहित हो, प्रेममय हो, उनके दैनिक जीवनमें शान्ति-आनन्दका अनुभव हो और ऊँचे-से-ऊँचा आध्यात्मिक लाभ हो। इसी दिशामें उनका कहना, लिखना एवं समझाना होता है।

परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका वर्तमान युगमें एक ऐसे महापुरुष हुए हैं जिनकी सभी चेष्टाएँ इसी भावसे स्वाभाविक होती थीं। गीताप्रेससे प्रकाशित पुस्तकोंके पाठकगण प्राय: उनसे परिचित हैं। वे गंगाके इस पार ऋषिकेशमें, गंगाके उस पार टीबड़ीपर, वटवृक्षके नीचे, जंगलोंमें तथा समय-समयपर अन्य स्थानोंमें सत्संगका आयोजन करते थे। उन सत्संगोंमें जो समय-समयपर उनके मुखसे अमृतमय अमूल्य वचन सुननेको मिले, उन्हें संगृहीत किया गया है। इन्हीं वचनोंको 'अमृत वचन' पुस्तकके नामसे प्रकाशित करके आप पाठकगणोंके समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है।

इस पुस्तकमें ऐसे दामी अमूल्य वचन हैं जिनमें भगवन्नाम, भगवत्स्मृति, गीताजी, नि:स्वार्थ सेवा तथा सत्संगकी महिमा विशेषतासे कही गयी है। व्यवहारकी ऐसी बातें भी हैं, जिन्हें हम काममें लावें तो हमारे गृहस्थ-जीवनमें बड़ी शान्ति मिल सकती है। हमारे व्यापारका सुधार हो सकता है, उच्चकोटिका व्यवहार हो सकता है तथा उन बातोंको काममें लाकर हम गृहस्थमें रहते हुए, व्यापार करते हुए भगवत्प्राप्ति कर सकते हैं। ऐसे समझनेमें सरल, उपयोगी, अमूल्य वचन बहुत कम उपलब्ध होते हैं। भगवत्कृपासे ही ये हमें इस पुस्तकरूपमें उपलब्ध हो रहे हैं।

हमें आशा है कि पाठकगण इन वचनोंको ध्यानसे पढ़कर मनन करेंगे एवं जीवनमें उतारनेका प्रयास करके विशेष आध्यात्मिक लाभ उठायेंगे।

प्रकाशक

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

॥ श्रीहरिः ॥

सत्संगकी अनमोल बातें

१. ईश्वरकी निरन्तर स्मृति और स्वार्थका त्याग तथा सबमें समभाव रखना चाहिये।

२. हर समय भगवान्‌की स्मृति रखनेसे स्वार्थका त्याग और समभाव अपने-आप हो जायगा।

३. यदि कहो कि हर समय भगवान्‌की स्मृति कैसे हो? इसके लिये यह समझना चाहिये कि हर समय भगवान्‌की स्मृतिके समान और कोई चीज नहीं है तथा भगवान्‌की स्मृति जिस समय छूट जाय, उस समय यदि प्राण चले जायँगे तो बड़ी भारी दुर्गति होगी।

४. परमात्माकी प्राप्तिके लिये सबसे बढ़िया औषधि है परमात्माके नामका जप और स्वरूपका ध्यान। जल्दी-से-जल्दी कल्याण करना हो तो एक क्षण भी परमात्माका जप-ध्यान नहीं छोड़ना चाहिये। निरन्तर जप-ध्यान होनेके लिये सहायक है विश्वास, विश्वास होनेके लिये सुगम उपाय है—सत्संग या ईश्वरसे रोकर प्रार्थना। वह सामर्थ्यवान् है, सब कुछ कर सकता है।

५. किसी भी प्रकारसे हो—चाहे योगसे, चाहे भक्तिसे, चाहे ज्ञानके साधनसे—अज्ञान हटाकर ज्ञान प्राप्त करनेकी आवश्यकता है। वह ज्ञान भक्तिसे हो सकता है, ज्ञानमार्गके साधनसे भी हो सकता है।

६. जिस कामके लिये हम आये हैं, उसको पूरा कर लेना ही सबसे बढ़कर असली काम है। हम आये हैं परमात्माकी प्राप्तिके लिये, पहले परमात्माकी प्राप्ति कर लेनी चाहिये। और दूसरी तरफ देखनेकी भी जरूरत नहीं है। एक क्षण भी दूसरे काममें समय नहीं लगाना चाहिये।

७. कालका कोई भरोसा नहीं। पता नहीं किस क्षण आ जाय, इसलिये जल्दी-से-जल्दी तेजीके साथ साधन करके काम बना लेना चाहिये। सबसे बढ़कर साधन परमात्माके नामका जप और स्वरूपका ध्यान है। जिस नाम, स्वरूपमें रुचि हो उसीका जप-ध्यान करना चाहिये।

८. जप-ध्यानकी सभी साधनोंमें जरूरत है—चाहे ज्ञानमार्ग हो, चाहे भक्तिमार्ग हो, चाहे योगका मार्ग हो।

९. भगवान् कहते हैं—तूँ मेरेमें मन लगा दे, मेरेमें मन लगानेसे भारी-से-भारी संकटोंसे तर जायगा।

१०. परमात्माके नामका जप और स्वरूपका ध्यान करते हुए ही समय व्यतीत करना चाहिये। एक क्षण भी इस कामको नहीं छोड़ना चाहिये।

११. विघ्न डालनेवाले तो विघ्न डालते ही रहते हैं, किन्तु अपनेको उन विघ्नोंसे अटकना नहीं चाहिये, खूब जोरसे चलना चाहिये।

१२. भगवान्की हम लोगोंपर बहुत कृपा है, जो मनुष्य-जन्म मिला। ऐसी कृपा होकर भी हम भगवान्की प्राप्तिसे वञ्चित रह जायँ तो हमारे लिये लज्जाकी बात है, दुर्भाग्यकी बात है।

१३. तुलसीदासजी कहते हैं—ऐसा मौका पाकर भी जो भगवान्की

प्राप्ति नहीं कर सका, वह मूर्ख निन्दाका पात्र है।

१४. साधु-महात्माके पास उनकी परीक्षा करनेके लिये नहीं जाना चाहिये और परीक्षा हो भी नहीं सकती।

१५. जिसका संग करनेसे अच्छे गुण आयें, अच्छे आचरण हों, उसका संग करना चाहिये। अपने लिये तो वह महात्मा ही है।

१६. किसीके अवगुणोंकी तरफ न तो ध्यान देना चाहिये और न आलोचना करनी चाहिये।

१७. प्रश्न—श्रद्धा किसमें करनी चाहिये?

उत्तर—जिसमें स्वार्थ नहीं हो, जिसमें अहंकार नहीं हो, जिसमें समता हो यानि पक्षपात नहीं हो, जिसकी चेष्टा दूसरोंके हितके लिये हो, उस पुरुषमें श्रद्धा करनी चाहिये और परमात्मामें श्रद्धा करनी चाहिये, शास्त्रोंमें करनी चाहिये, परलोकमें करनी चाहिये।

१८. मनुष्यको विशेष करके स्वभावका सुधार करना चाहिये। स्वभावका सुधार होनेसे आचरणका सुधार अपने-आप हो जाता है।

१९. अन्तःकरणमें वैराग्य हो जाय तो मन-इन्द्रियोंका वशमें होना सहज है।

२०. वैराग्यपूर्वक मन-इन्द्रियोंको रोकना बहुत अच्छी चीज है, वैराग्य मुक्तिको देनेवाला है।

२१. भक्तिमार्ग और ज्ञानमार्ग दोनों ही अच्छे हैं, किन्तु मुकाबला करनेपर भक्तिमार्ग सुगम है, इसमें गिरनेकी सम्भावना कम है।

२२. प्रश्न—वैराग्य किसको कहते हैं?

उत्तर—वैराग्यका तात्पर्य है संसारमें प्रीति नहीं होना।

२३. प्रश्न—उपरामता किसको कहते हैं?

उत्तर—संसारी पदार्थोंमें वृत्ति नहीं जाना, इसको उपरामता कहते हैं।

२४. एक तरफ यदि हाथी आता है तथा एक तरफ कुसंगी आता है तो हाथीके नीचे दबकर मर जाना अच्छा है, किन्तु कुसंगीका संग नहीं करना चाहिये। हाथीके नीचे दबकर तो एक बार ही मरेगा पर कुसंगीका संग करनेवालेको बारम्बार जन्मना-मरना पड़ेगा। जैसा संग करोगे, वैसा रंग चढ़ेगा; इसलिये कुसंग नहीं करना चाहिये।

२५. आजसे ही साधन तेज करके आदत बदल देनी चाहिये, जल्दी ही लाभ उठा लेना चाहिये।

२६. भगवान्‌को हर समय याद रखनेसे अन्तकालमें भगवान्‌की स्मृति रह सकती है। जो अन्तकालमें भगवान्‌का स्मरण करता हुआ जाता है, वह परमगतिको प्राप्त हो जाता है, इसलिये निरन्तर भगवान्‌को याद रखना चाहिये।

२७. तात्त्विक विचार करते रहना चाहिये कि मैं कौन हूँ? यह संसार क्या है? परमात्मा क्या है? इनका सम्बन्ध क्या है? मैं कहाँसे आया हूँ? कहाँ जाऊँगा? मेरा क्या कर्तव्य है? यह विचारकर अपने कर्तव्यपर तत्पर होकर तुल जाना चाहिये।

२८. परमात्मासे प्रार्थना करनेसे परमात्मा अपनी शक्ति दे सकते हैं, क्षणमें असम्भवको भी सम्भव कर सकते हैं। भगवान्‌के स्वरूपको बारम्बार याद करके मुग्ध होते रहना चाहिये।

२९. महात्माका इतना कहना ही बहुत है कि भगवान् मिलते हैं। इतना सुनकर साधकको भगवान्‌से मिलनेके लिये लग जाना चाहिये, और किसीकी तरफ नजर उठाकर भी नहीं देखना चाहिये।

३०. परमात्माकी प्राप्तिमें सिद्धियाँ भी विघ्नरूप हैं।

३१. जो तीव्र वैराग्यवान् पुरुष है, उसका साधन भी तीव्र होता है, उसको इसी जन्ममें परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है अन्यथा अन्तकालमें तो हो ही जाती है। इसमें कोई शंकाकी बात नहीं है, किन्तु जिनका साधन शिथिल है, उनके कल्याणकी गारन्टी नहीं है।

३२. **प्रश्न**—पुण्य-धर्म करना चाहिये या नहीं?

उत्तर—पुण्य-धर्म तो खूब करना चाहिये, किन्तु लक्ष्य एक ही होना चाहिये। पुण्य-धर्म भगवान्में प्रेम होनेके लिये करना चाहिये।

३३. **प्रश्न**—जिनका भगवान्में प्रेम है उनको पुण्य-धर्म करना चाहिये या नहीं?

उत्तर—उनको भी प्रेम कायम रखनेके लिये करना चाहिये।

३४. **प्रश्न**—महात्माको पुण्य-धर्म करना चाहिये या नहीं?

उत्तर—उनको भी लोगसंग्रहके लिये करना चाहिये।

३५. सिद्धान्त यह हुआ कि पुण्य-धर्म निष्कामभावसे करना चाहिये, सकामभावसे नहीं करना चाहिये।

३६. धन, स्त्री, शरीरका आराम, मान, कीर्ति—इन पाँच विघ्नोंमें भी तीन विघ्न बहुत तगड़े हैं—पहला स्त्री, दूसरा शरीरका आराम, तीसरा कीर्ति।

३७. **तुलसी हरिकी भक्तिमें यह पाँचों न सुहात।**
विषयभोग, निद्रा, हँसी, जगत प्रीति बहुबात॥

सब बातको छोड़कर ईश्वरकी भक्ति करनी चाहिये। ईश्वरकी भक्ति तथा ज्ञानसे ये दोष अपने-आप मिट जायँगे।

३८. भगवान्में प्रेम करना है—यह साक्षात् भगवान्की प्राप्ति करानेवाला है। सबसे प्रेम हटाकर परमात्मामें प्रेम करना

चाहिये। जो भगवान्‌को छोड़कर और किसीमें प्रेम करता है, वह मूर्ख है।

३९. भगवान्, महात्मा और शास्त्रमें श्रद्धा करनी चाहिये। यह साक्षात् भगवान्‌को प्राप्त करानेवाली है।

४०. केवल भगवान्‌के ध्यानसे, केवल भगवान्‌को याद करनेसे, केवल भगवान्‌में श्रद्धा-प्रेम करनेसे, केवल भगवान्‌के नाम-जपसे—एक-एक भावसे भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है। जो प्रीतिपूर्वक भगवान्‌को भजते हैं, उनको भी भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है। केवल भगवान्‌की पूजासे भी भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है।

४१. आसक्तिसे रहित होकर निष्कामभावसे कर्म करनेसे भी भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है।

४२. भगवान्‌की प्राप्तिमें सहायक दो बातें हैं, एक तो विवेक और दूसरा तीव्र वैराग्य यानी वैराग्यपूर्वक संसारसे उपरति।

४३. क्षण-क्षणमें साधनको बढ़ाना चाहिये।

४४. कैसा भी पापी-से-पापी क्यों न हो, भगवान्‌की शरण होनेसे तर जाता है। कैसा भी मूर्ख-से-मूर्ख हो, भगवान्‌की शरण होनेसे तर जाता है। समय भी चाहे थोड़े-से-थोड़ा हो, आज ही मृत्यु हो जाय, भगवान्‌की शरण होनेसे उद्धार हो जाता है।

४५. मनमें कभी निराशा पैदा नहीं करनी चाहिये, हमको सब प्रकारसे भगवान्‌की शरण होना चाहिये।

४६. भगवान्‌ने गीतामें कहा है—कैसा भी पापी क्यों न हो, जो अनन्य भावसे मुझे भजता है, वह जल्दी धर्मात्मा हो जाता है और परमशान्तिको प्राप्त हो जाता है।

४७. सत्संगके प्रभावसे भी भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है। सत्संगमें

बताये अनुसार साधन करनेसे भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है।

४८. मनुष्य-शरीर पाकर परमात्माकी प्राप्ति नहीं की तो यह मनुष्य-शरीरकी हत्या करना है। इस बातको सोचकर संसारसे वैराग्य करके जोरके साथ साधन करना चाहिये।

४९. जो मनुष्य-शरीर पाकर विषयोंका सेवन करता है, वह अमृतको छोड़कर विषका पान करता है।

५०. संसारके विषय-भोगोंको घृणित समझकर बिलकुल त्याग देना चाहिये।

५१. वैराग्यवान् पुरुषोंका संग, चिन्तन, स्मरण करनेसे वैराग्य उत्पन्न होता है।

५२. भगवान्‌ने हमें मनुष्य-जन्म दिया है, यह सोच-समझकर ही दिया है। हमको—मनुष्यमात्रको परमात्माकी प्राप्तिका अधिकार है।

५३. परमात्माकी प्राप्तिके लिये कुछ करना-धरना नहीं है, केवल परमात्माकी प्राप्तिकी तीव्र इच्छा होनी चाहिये, अन्य सब इच्छाओंको कुचल डालना चाहिये।

५४. अबसे लेकर मरणपर्यन्त नारायणकी ही रटन लगानी चाहिये, नारायणको एक क्षण भी नहीं छोड़े। रात-दिन कभी नहीं छोड़ना चाहिये। जब आपका जागृत कालमें निरन्तर भगवान्‌के भजनका अभ्यास हो जायगा तो सोनेके समय भी भगवान्‌का भजन ही होगा। जब १८ घंटा निरन्तर भजन होगा तो रातको ६ घंटा सोनेके समय भी भजन ही होगा।

५५. हम अपनी शक्तिभर परमात्माकी प्राप्तिके लिये चेष्टा कर लेंगे तो भगवान् बड़े दयालु हैं, परमात्माकी प्राप्ति हो ही जायगी। अभीतक नहीं हुई, इसका कारण यह है कि हमने अपनी शक्तिभर परमात्माका भजन कभी नहीं किया।

५६. अपनी जिम्मेवारी तो एक ही है—हर वक्त भगवान्‌को याद रखना, हर वक्त भगवान्‌को रटना; फिर सारी जिम्मेवारी भगवान् ले लेंगे।

५७. जो कहता है 'मैं बहुत भजन करता हूँ', वह भगवान्‌के तत्त्वको नहीं समझता, उसके लिये तो भजन भाररूप है। भगवान्‌का रहस्य समझमें आ जायगा तो कहेगा कि 'भजन कहाँ होता है!'

५८. जबतक निरन्तर भजन नहीं होगा, तबतक कार्यकी सिद्धि नहीं होगी।

५९. भगवान्‌से मिलनेके लिये रुपयोंकी, बलकी, बुद्धिकी आवश्यकता नहीं है। आपके पास जो है बिना छिपाये सब-का-सब भगवान्‌के अर्पण कर दो, भगवान् मिल जायँगे।

६०. सबसे प्रेम हटाकर केवल भगवान्‌में ही प्रेम करना चाहिये। भरतजीकी-सी दशा हो जानी चाहिये, फिर भगवान्‌के मिलनेमें विलम्ब नहीं हो सकता।

६१. भूख, प्यास, नींदका ज्ञान ही नहीं रहना चाहिये। रात-दिन भगवान्‌के लिये रोना, तड़पन चाहिये।

६२. मन जहाँ-जहाँ जाये, वहाँ-वहाँसे हटाकर परमात्माके ध्यानमें लगाना चाहिये।

६३. परमात्मा-महात्मा मदद देनेको तैयार हैं, उनसे मदद माँगनी चाहिये। अपना यही काम है कि मनको परमात्मामें लगा दें, हर वक्त मनके सामने भगवान्‌को रखें।

६४. ईश्वर और महात्माकी आज्ञाका पालन करनेके लिये अधिक-से-अधिक जोर लगाना चाहिये।

६५. गीताजीकी आज्ञा भगवान्‌की आज्ञा समझनी चाहिये।

६६. मन-इन्द्रियाँ सबको भगवान्‌के अर्पण कर देना चाहिये। मन-इन्द्रियोंसे भगवान्‌का काम होने लगे तो समझना चाहिये कि ये भगवान्‌के अर्पण हो गये। मनसे भगवान्‌का मनन, कानोंसे भगवान्‌की कथा-कीर्तन सुनना, आँखोंसे भगवान्‌को देखना तथा अन्य सब इन्द्रियोंसे भी भगवान्‌का सेवन करना चाहिये।

६७. संसारके झंझटोंसे दूर रहना और संसारसे वैराग्य रखना चाहिये।

६८. परमात्माकी प्राप्तिमें मान और कीर्ति भारी विघ्न हैं। जो कल्याण चाहता है, वह मान-बड़ाईको घातक समझकर दूर रहे और भगवान्‌का भजन करे।

६९. जितने पदार्थ हैं, अपना भगवद्भाव होनेसे सबमें भगवान्‌का दर्शन होने लगता है। उसके दर्शनसे दूसरेका भाव बदल जाता है। उसकी वाणीसे दूसरेका भाव बदल जाता है।

७०. जो भगवत्प्राप्त महापुरुष हैं उनके दर्शन, भाषण और स्पर्शसे भी आत्मा पवित्र हो जाती है। वे महात्मा तो भगवान्‌का हर वक्त ही दर्शन करते रहते हैं। वे हर वक्त शान्तिमय-आनन्दमय रहते हैं। उनके आसपास अशान्ति आ ही नहीं सकती। भगवान् कहते हैं—वह मुझको अतिशय प्यारा है और मैं उसको अतिशय प्यारा हूँ।

७१. जो महात्माको साधारण बुद्धिसे देखते हैं, महात्मा उनके आगे और भी साधारण बन जाते हैं।

७२. भक्तिके मार्गमें मैं तो सबका सेवक और सब कुछ भगवान् हैं, सबमें भगवान्-ही-भगवान् भरे हुए हैं, जैसे बर्फमें जल-ही-जल भरा हुआ है।

७३. असली बात तो यह है कि जितनी बात सुनी जाय, उसको काममें लानेकी चेष्टा की जाय। अपने लोगोंकी आदत है कि

सुनते हैं बहुत, काममें लाते हैं कम।

७४. मनुष्य अपने लिये जो कर्म करता है, स्वार्थके लिये करता है, अहंकारसे करता है-वे ही कर्म बाँधनेवाले हैं। किन्तु फलासक्ति, स्वार्थसे रहित होकर केवल लोकहितके लिये या ईश्वरकी सेवाके लिये वह जो कर्म करता है, वे कर्म लाभदायक हैं, बाँधनेवाले नहीं हैं।

७५. भगवान्‌में निष्काम प्रेम हो जानेके बाद फिर भोग और मोक्षकी इच्छा नहीं रहती।

७६. भगवान्‌में जो हेतुरहित प्रेम है, वह विशुद्ध प्रेम है।

७७. निष्काम भावसे काम करनेसे कोई गलती भी हो जाती है तो वह भी माफ है।

७८. किसी आदमीने रुपये-पैसोंके स्वार्थका त्याग तो कर दिया, किन्तु शरीरके आरामका त्याग नहीं किया, वह सकामी ही है। शरीरके आरामका भी त्याग कर दिया, लेकिन मान-बड़ाईका त्याग नहीं किया, वह भी सकामी ही है। शरीरका आराम, मान, बड़ाई, रुपया आदिके स्वार्थका त्याग करनेवाला निष्काम होता है।

७९. हमारा जितना जीवन सकाममें बीत गया सो बीत गया, बाकीका सारा जीवन निष्काम भावसे ही बिताना चाहिये। निष्कामका रहस्य समझनेसे रुपया, शरीर, मान, बड़ाई, स्वार्थका त्याग करना कठिन नहीं है।

८०. ममता, आसक्ति, कामना, अहंकारसे रहित होकर कर्म करना चाहिये तथा कर्मफलका हेतु भी नहीं बनना चाहिये।

८१. भगवान्‌की प्राप्तिके आगे सारे काम गौण हैं, सारे काम छोड़ देने चाहिये। जैसे रुपयोंके लोभीके लिये अन्य सारे

काम गौण हो जाते हैं, वैसे ही भगवान्‌के लोभीके लिये सारे सांसारिक काम गौण हो जाते हैं।

८२. भगवान्‌में जिसकी प्रीतिकी इच्छा है, उसके द्वारा सारे सांसारिक कामोंकी अवहेलना हो जाती है। जैसे—गोपियाँ, शबरी तथा सुतीक्ष्ण।

८३. जैसे रुपयोंका लोभी रुपयोंका आदर करता है, उससे भी बढ़कर भगवान्‌का, सत्संगका, साधनका, भजन-ध्यानका आदर करना चाहिये।

८४. लोभी आदमी रुपयोंके प्रभावको समझ जाता है तो रुपयोंके लिये मर मिटता है, वैसे ही हम भी भगवान्‌के प्रभावको समझ जायँ तो भगवान्‌के लिये मर मिटेंगे। भगवान्‌की प्राप्तिके बिना हमारा दुःख दूर नहीं होगा।

८५. भगवान्‌की प्राप्तिके लिये रुपया, धन, स्त्री, पुत्र, शरीरका आराम आदि किसीकी भी परवाह न करके कटिबद्ध होकर साधनमें लग जाना चाहिये। फिर परमात्माकी प्राप्तिमें देरी नहीं होगी।

८६. परमात्माकी प्राप्ति होनेके बाद सदाके लिये दुःख दूर हो जायँगे, सदाके लिये शान्ति और आनन्द हो जायगा, दुर्गुण और दुराचारका सदाके लिये नाश हो जायगा।

८७. परमात्माकी प्राप्तिमें प्रारब्ध बाधा नहीं पहुँचा सकता। प्रारब्धका सम्बन्ध स्त्री, धन आदिसे रहता है।

८८. एक महात्मासे सारे जीवोंका कल्याण हो सकता है, कम-से-कम मनुष्यमात्रका तो कल्याण हो ही सकता है। एक दीपकसे लाखों दीपक जल सकते हैं, किन्तु दूसरे दीपकमें तेल और बत्ती होनी चाहिये। वैसे ही महात्मामें श्रद्धा और विश्वास होना चाहिये।

८९. दो वशीकरण मन्त्र हैं—इससे महात्मा, परमात्मा, देवता कोई भी वशमें हो सकते हैं—एक तो स्वार्थका त्याग यानी स्वार्थरहित सेवा करना और दूसरा उनके गुणोंका गान करना।

९०. वैराग्य, उपरामता तथा ध्यानसे प्रत्यक्ष ही शान्ति-आनन्द आते हैं, इसलिये संसारसे वैराग्य और परमात्मासे प्रेम, उनका भजन-ध्यान निरन्तर करना चाहिये।

९१. एक भगवान्‌को छोड़कर किसी बातकी इच्छा नहीं होनेका नाम तीव्र इच्छा है। तीव्र इच्छासे भगवान्‌में प्रेम होगा, प्रेम होनेसे भगवान्‌का भजन-ध्यान स्वाभाविक ही होगा, करना नहीं पड़ेगा।

९२. जो परमात्माको छोड़कर संसारमें, संसारके विषयोंमें मन लगाता है, उसकी शास्त्रोंने निन्दाकी है, उसे मूर्ख बतलाया है।

९३. विषको खानेवाला एक जन्ममें ही मरता है, विषयोंको भोगनेसे बार-बार जन्मता-मरता है, इसलिये संसारके भोगोंसे, पदार्थोंसे मन हटाकर परमात्मामें लगाना चाहिये।

९४. चाहे निर्गुणका साधक हो चाहे सगुणका साधक हो, सबके लिये भजन-ध्यान सर्वोपरि साधन है।

९५. जो सर्वत्र भगवान्‌को ही देखता है, भगवान्‌में ही मन लगाता है, भगवान्‌का चिन्तन करता हुआ जाता है, वह भगवान्‌को ही प्राप्त होता है।

९६. जो भगवान्‌की दयाको, कृपाको अपनेपर समझ लेता है, चिन्ता, भय उसके पास ही नहीं आ सकते, वह सदा प्रसन्न रहता है।

९७. जहाँ मन जाय वहाँ भगवान्‌को देखे, जहाँ नेत्र जायँ वहाँ भगवान्‌को देखे, बुद्धिमें हरिके रंगका चश्मा चढ़ा लेना

चाहिये, सर्वत्र हरिको ही देखे। सबका सार नित्य-निरन्तर भजन-ध्यान करना चाहिये।

९८. अच्छा काम करके यदि अहंकार आ जाता है तो वह क्षय हो जाता है, इसलिये अहंकार नहीं करना चाहिये।

९९. आपको एक ही बात बतलायी जाती है—भगवान्‌का हर समय निरन्तर स्मरण और आप जो कोई भी काम करें, उसमें स्वार्थका त्याग। बस इतनेमें ही भगवान् आपके पीछे-पीछे फिरेंगे, इसमें कोई शंकाकी बात नहीं है। भगवान् श्रीमद्भागवतमें कहते हैं— मैं भक्तके पीछे-पीछे घूमता हूँ।

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शिनम्।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः॥

(११। १४। १६)

१००. भगवान् कहते हैं—जो मुझे अपना सर्वस्व अर्पण कर देता है, उसको मैं अपना सर्वस्व अर्पण कर देता हूँ।

१०१. भक्तिके मार्गमें प्रेम प्रधान है, कर्मयोगमें स्वार्थका त्याग प्रधान है, ध्यानमें आलस्य और विक्षेपका त्याग प्रधान है तथा ज्ञानके मार्गमें परमात्माके तत्त्वका ज्ञान प्रधान है।

१०२. चाहे किसी वर्णमें हो, चाहे किसी आश्रममें हो, परमात्माकी प्राप्तिका सभीका अधिकार है।

१०३. स्मृतिकारोंने कलियुगमें संन्यास लेना निषिद्ध बतलाया है, किन्तु तीव्र वैराग्य हो तो लेनेमें भी कोई हर्ज नहीं, कठिनाई जरूर है।

१०४. कलियुगमें भगवान्‌के नामका जप सभीसे बढ़कर बताया है, नामका जप, स्वरूपके ध्यानकी सभी साधनोंमें आवश्यकता है।

१०५. हरे रंगका चश्मा लगानेसे सारा संसार हरा-हरा दीखता है, वैसे ही हरिके रूपका चश्मा लगानेसे सारा संसार हरिका

रूप दिखायी देने लगता है।

१०६. प्रश्न—पर वैराग्य किसको कहते हैं?

उत्तर—गुण और गुणोंके कार्य किसीमें तृष्णा नहीं रहना, सब इच्छा-कामनाका नाश हो जाना पर वैराग्य है।

१०७. नया काम किया जाता है, उसमें प्रारब्ध हेतु नहीं है।

१०८. ध्रुवने ५॥ महीनेमें तपस्या करके भगवान्‌का दर्शन किया था, उस प्रकारकी तपस्या करके कलियुगमें ५॥ दिनमें भी कल्याण हो सकता है।

१०९. सारे संसारको परमात्माका स्वरूप मानना चाहिये और हर समय आनन्दमें मग्न रहना चाहिये। जो कुछ हो रहा है उसको भगवान्‌की लीला समझे।

११०. किसीकी भी आत्माको दुःख पहुँचे, उस कामके नजदीक भी नहीं जाना चाहिये।

१११. साधुको कैसा होना चाहिये? नेत्रोंसे अंधेकी तरह, पैरोंसे लँगड़ेकी तरह, कानोंसे बहरेकी तरह, हाथोंसे लूलेकी तरह; अर्थात् कानोंसे परमात्माकी बात सुने, नहीं तो बहरेकी तरह रहे, वाणीसे भगवत्-वार्तालापके सिवाय कुछ नहीं बोले, पैरोंसे भगवान्‌के या महात्माके पास ही जाय, हाथोंसे भगवान्‌की ही सेवा करे।

११२. अहंता, ममताका त्याग करना चाहिये।

११३. मनुष्यमात्रके करने योग्य बातें—दिनमें सोना नहीं चाहिये, रात्रिमें ६ घंटेसे ज्यादा नहीं सोना चाहिये, प्रमाद नहीं करना चाहिये, दुर्गुणोंका त्याग करना चाहिये, सबके साथ प्रेमका व्यवहार करना चाहिये।

११४. साधकको चार प्रकारके लोगोंसे डरना चाहिये—एक तो

नास्तिकसे, दूसरा जो गुरु बनना चाहता है उससे, तीसरा दुष्ट पुरुषसे तथा चौथा पुरुषोंको स्त्रियोंसे और स्त्रियोंको पुरुषोंसे अलग-अलग रहना चाहिये। जो इनके चपेटमें आ जाता है वह डूब जाता है।

११५. महापुरुषोंमें तथा भगवान्‌के भक्तोंमें चार गुण प्रधान रहेंगे। पहला दूसरोंको भगवान्‌की भक्तिमें लगानेकी चेष्टा, दूसरा व्यक्तिगत स्वार्थका अभाव तीसरा समता और चौथा सुहृदता।

११६. एकान्तमें बैठकर दिल खोलकर भगवान्‌के आगे रोना चाहिये। अब भगवान्‌के आगे रो लोगे तो आगे रोना नहीं पड़ेगा, नहीं तो सदाके लिये रोना पड़ेगा।

११७. भगवान्‌के लिये दिनकी भूख और रातकी नींद चली जानी चाहिये।

११८. सबसे बढ़कर साधन है हर वक्त भगवान्‌को याद रखना। इससे बढ़कर साधन दुनियामें कोई है ही नहीं। भगवान्‌का जैसा स्वरूप आप समझें वैसा ही हर वक्त याद रखें।

११९. भगवान् धनसे नहीं मिलते, विद्या, बुद्धि और बलसे नहीं मिलते; भगवान्‌से मिलानेवाला बल दूसरा ही है।

१२०. एक आदमी गरीब-से-गरीब और दरिद्र है और एक आदमी राजा—महाराजा है, भगवान्‌के घर दोनोंकी एक ही इज्जत है।

१२१. धन, विद्या और बुद्धि साधनमें बाधक भी हैं और सहायक भी हैं। इनको संसारी काममें लगा देनेसे बाधक हैं, इनको भगवान्‌की भक्तिमें लगा दें तो साधक हैं।

१२२. एक आदमी तो विद्वान् है और भगवान्‌के सूक्ष्म-से-सूक्ष्म तत्त्वको समझता है, किन्तु उपासना नहीं करता; दूसरा

१३६. ऐसा समझना चाहिये कि आनन्दरूपसे परमात्मा सर्वत्र बाहर-भीतर विराजमान हैं। जहाँ मन जाय वहाँ भगवान्‌को देखे, जहाँ नेत्र जाय वहाँ भगवान्‌को देखे।

आदमी मूर्ख है, भगवान्‌के अवतार आदिका ध्यान करता है तो उस विद्वान्‌से वह श्रेष्ठ है

१२३. राग-द्वेष सब अनर्थोंके मूल हैं। जितना राग-द्वेष कम हो गया, उतना ही उत्थान समझना चाहिये। जितना राग-द्वेष ज्यादा है, उतना ही अधिक पतन समझना चाहिये।

१२४. सद्गुण, सदाचार और ईश्वरकी भक्ति ये अमृतके समान हैं, इनका तत्परताके साथ सेवन करना चाहिये।

१२५. पाप, आलस्य, प्रमाद, भोग—इनको विषके समान समझकर त्याग देना चाहिये।

१२६. जो आपको दीख रहा है, उस संसारकी जगह परमात्माको देखना चाहिये और यह सब परमात्मा ही है, इसके लिये शास्त्र प्रमाण है, महात्माका अनुभव प्रमाण है। वह परमात्मा हमारे बाहर-भीतर परिपूर्ण है।

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्॥ (गीता १३। १५)

वह चराचर सब भूतोंके बाहर-भीतर परिपूर्ण है और चर अचररूप भी वही है, और वह सूक्ष्म होनेसे अविज्ञेय है तथा अति समीपमें और दूरमें भी स्थित वही है।

१२७. जो मन और इन्द्रियोंपर नियन्त्रण नहीं कर सकता, उसको मन-इन्द्रियाँ गड्ढेमें डाल देती हैं।

१२८. हमको गलत रास्तेपर चलानेवाले काम, क्रोध, लोभ हैं; इन तीनोंको छोड़कर महात्माके बतलाये अनुसार, शास्त्रके बतलाये अनुसार आत्माके कल्याणके लिये चलना चाहिये।

१२९. जो कोई भगवान्‌को अपने हृदयमें बसाता है, उसको भगवान् अपने हृदयमें बसा लेते हैं।

१३०. वर्षोंतक साधन करके जो लाभ नहीं होता, वह लाभ भगवान्‌की कृपासे क्षणमात्रमें हो जाता है। परमात्माकी कृपा सबपर है ही, माननेवाला लाभ उठा लेता है यानि भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है।

१३१. भगवान् कहते हैं जो मुझको पुरुषोत्तम जान लेता है, वह मुझे एक क्षण भी नहीं भूलता।

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत॥ (गीता १५।१९)

हे भारत! जो ज्ञानी पुरुष मुझको इस प्रकार तत्त्वसे पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकारसे मुझ वासुदेव परमेश्वरको ही भजता है।

१३२. जैसे जलके बिना मछली तड़पने लगती है, वैसे ही भगवान्‌के बिना मनुष्य तड़पने लग जाय तो भगवान् क्षणमें आ सकते हैं। भरतजीका उदाहरण सामने है।

१३३. प्रभुप्राप्तिके लिये शरीरको मिट्टीमें मिलाना पड़े तो मिला देना चाहिये, आगमें कूदना पड़े तो कूद जाना चाहिये।

१३४. भगवद्भावोंका संसारमें खूब प्रचार करना चाहिये। पहले अपनेमें करे फिर दूसरोंमें करे। वही अपना प्यारा है, वही अपना मित्र है जो भगवद्‌विषयमें मदद करे।

१३५. ऐसा समझना चाहिये कि हर वक्त हमारेपर भगवान्‌की दया बरस रही है। उस दयाको देख-देखकर हर समय मुग्ध रहना चाहिये।

१३६. ऐसा समझना चाहिये कि आनन्दरूपसे परमात्मा सर्वत्र बाहर-भीतर विराजमान हैं। जहाँ मन जाय वहाँ भगवान्‌को देखे, जहाँ नेत्र जाय वहाँ भगवान्‌को देखे।

१३७. भगवान्‌का ध्यान हर वक्त कायम रखना चाहिये। चलते, उठते, बैठते हर समय भगवान्‌के ध्यानमें मस्त होकर रहना चाहिये।

१३८. जिसको अपना कल्याण चाहिये, उसको भावी संकल्प नहीं करना चाहिये। एक परमात्माका संकल्प छोड़कर और किसीका संकल्प नहीं करना चाहिये; क्योंकि जो संकल्प करोगे वह पूरा होनेसे पहले मृत्यु हो जायगी तो जिसका संकल्प करोगे उसीके अनुसार जन्म होगा।

१३९. किसीके अवगुणोंकी आलोचना नहीं करनी चाहिये, दूसरोंकी आलोचना करनेसे पतन हो जाता है।

१४०. पापियोंके भी अवगुणोंकी आलोचना नहीं करनी चाहिये, फिर अच्छे पुरुषोंकी आलोचना करेंगे तब तो हमारा पता ही नहीं लगेगा। यानि हमारी दुर्गति होगी।

१४१. भजन-ध्यान मनसे नहीं करनेका विशेष माहात्म्य नहीं है। मन लगाकर ही भजन-ध्यान करना चाहिये, मन लगाकर गीताजीका अर्थसहित पाठ करना चाहिये।

१४२. गायत्री-जपके समय भी अर्थ और भावके सहित जप करनेसे ज्यादा लाभ होगा।

१४३. महात्मा पुरुषोंका आश्रय, अनुभव बहुत विलक्षण होता है। वह अनुभव महात्मा होनेसे ही मालूम होता है।

१४४. यह जो संसार दीख रहा है, यह संसार है नहीं, इसकी जगह परमात्मा-ही-परमात्मा है। संसारको न देखकर परमात्माको देखना चाहिये। वास्तवमें परमात्मा ही है।

१४५. हर वक्त भगवान्‌के सम्मुख रहना चाहिये। जो हर वक्त भगवान्‌को सम्मुख देखता है, वह भगवान्‌के सम्मुख है।

१४६. किसीके समझमें आ जाय तो यह बहुत ऊँचे दर्जेकी चीज है '**वासुदेवः सर्वमिति**'। महात्माकी तो यह स्वभावसिद्ध बुद्धि है। साधकको अभ्यास करना चाहिये कि यह जो कुछ है सब परमात्मा ही है। पहले वाणीके द्वारा अभ्यास करना चाहिये, फिर मन पकड़ लेगा, फिर बुद्धिमें निश्चय हो जायगा, फिर आत्मगत हो जायगा।

१४७. यह सारा-का-सारा ब्रह्माण्ड परमात्माका स्वरूप है। एक ही परमात्मा अनेक रूपमें दीख रहे हैं। इसलिये जिसकी सबमें परमात्मबुद्धि हो जाय, उसने तो अपना जीवन सफल बना लिया, उसको हर वक्त शान्ति-आनन्द रहेगा, उसको जीते-जी परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी, अन्यथा अन्त समयमें तो हो ही जायगी। जिसकी सबमें भगवद्बुद्धि हो गयी है, उसका ध्यान तो अपने-आप ही होने लगेगा, फिर उसका ध्यान छूट ही नहीं सकता।

१४८. अपना वचन कायम रखनेके लिये सर्वस्वका त्याग कर देना चाहिये, किन्तु वचनको सत्य रखना चाहिये। महात्माके वचनके आगे अपने वचनका, सर्वस्वका त्याग कर देना चाहिये।

१४९. कोई बिना अपराध अपना अनिष्ट करे तो भगवान्‌का भेजा हुआ पुरस्कार समझकर प्रसन्न होना चाहिये।

१५०. कोई अपनी निन्दा करे तो उससे प्रसन्न होना चाहिये।

१५१. कोई अपनेपर क्रोध करे तो अपनी गलती समझनी चाहिये।

१५२. हम किसीपर क्रोध करें तो अपनी गलती समझनी चाहिये।

१५३. हमारे निमित्तसे किसीको भी दु:ख हो गया तो अपना अपराध समझकर उससे क्षमा माँगनी चाहिये।

१५४. भगवान्‌का प्यारा बनना हो, भगवान्‌का भक्त बनना हो तो अपने हृदयको हर्ष, अमर्ष, भय, उद्वेग आदिसे रहित बनाना चाहिये। दूसरोंके हृदयमें यह नहीं हो ऐसी चेष्टा करनी चाहिये।

१५५. मितभाषी बनना चाहिये, मितभाषी यानी थोड़ा बोलना, सत्य, हित, प्रिय वचन बोलना; ज्यादा बोलनेसे गलती हो सकती है।

१५६. निष्काम कर्म बहुत ऊँचे दर्जेकी चीज है, लेकिन आजकल स्वार्थपरायणता इतनी बढ़ गयी है जिससे निष्कामभाव छिप गया। स्वार्थको छोड़कर लोकहितके लिये कर्म करना चाहिये। सकामी आदमी कर्म करते समय यह सोचता है कि इस कामको करनेसे मुझे क्या लाभ होगा, इसी तरह निष्काम कर्म करनेवालेको यह सोचना चाहिये कि इस कामको करनेसे लोगोंको क्या लाभ होगा।

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति॥ (गीता २।७१)

जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओंको त्यागकर ममतारहित, अहङ्काररहित और स्पृहारहित हुआ विचरता है, वही शान्तिको प्राप्त होता है अर्थात् वह शान्तिको प्राप्त है।

इस श्लोकके अनुसार सारे कर्म करने चाहिये।

१५७. निष्कामभाव, समता, सत्य व्यवहार, अयाचना—यह चार चीज बहुत दामी है।

१५८. माँगे तो बड़ी चीज माँगे। ईश्वरकी माँग करे, छोटी चीज—धन क्या माँगे?

१५९. व्यवहार एक नम्बरका करना चाहिये। सब दोष निकाल देने चाहिये। आप लोग मदद करें तो दोष निकालना कोई बड़ी बात नहीं है।

१६०. आचरण, भाव, नीयत अच्छी होनेसे भगवान्‌के मिलनेमें देर नहीं लगती।

१६१. त्याग, वैराग्य, समता रहनी चाहिये। बाहरसे शास्त्रके अनुसार नीतिका व्यवहार करना चाहिये।

१६२. महात्माकी पहचान—

१. महात्मामें सुखकी आकांक्षा नहीं रहती।

२. कितना ही दुःख आ पड़े, महात्मा विचलित नहीं होता।

३. महात्माकी समतामें कमी नहीं आती, यह बाहरसे मालूम नहीं पड़ती, यह भीतरकी स्थिति है।

४. महात्मा निरहंकार रहते हैं।

५. महात्माके समान कोई निष्कामी नहीं है।

६. उनके अन्दर वासना ही नहीं है तो कामना कहाँसे आये?

७. उनके अन्दर वासना, विषमता, अज्ञान, अहंकार, ममता, स्वार्थ, कामनाका अभाव हो जाता है।

८. उनके अन्दर आनन्दकी भी पराकाष्ठा है।

१६३. कामना और आसक्तिको लेकर जो स्फुरणा होती है, उसका नाम संकल्प है।

१६४. कामना और आसक्तिरहित होकर जो स्फुरणा हो वह दोषी नहीं है, वह तो महात्माके भी हो सकती है।

१६५. ईश्वर, भक्ति और धर्मके ऊपर दृढ़ रहना चाहिये।

१६६. सब अडंग बडंग छोड़कर एक भगवान्‌के ध्यानमें मग्न रहे। मैंने तो सब अनुभव करके देख लिया, साधनमें ध्यानके समान और कुछ नहीं है। ध्यानका फल है भगवान्‌की प्राप्ति।

१६७. असली चीज है ब्रह्मचर्यका पालन, ब्रह्मचर्यका फल है ध्यान, ध्यानका फल है परमात्माकी प्राप्ति।

१६८. ध्यान जैसी असली चीजको छोड़कर आप इधर-उधर भटक

रहे हैं, यह आश्चर्यकी बात है। मुझे ध्यानके बराबर और कोई चीज अच्छी नहीं मालूम देती। ध्यान रसमय है, आनन्दमय है, अमृतमय है; इसलिये ध्यानमें मस्त रहना चाहिये।

१६९. भगवान्‌के ध्यानका शौक एवं व्यसन होना चाहिये। मैं ठीक कहता हूँ, ध्यानके समान और कोई वस्तु नहीं है। आप चाहे मानें चाहे मत मानें।

१७०. मेरे तो मनमें आता है कि आप सबका ध्यान लगा दूँ, किन्तु क्या करूँ आप लोग मदद नहीं करते। ध्यान लग जाय तो परमात्मा तो अपने आप-आयेंगे।

१७१. ध्यान करो, परमात्माको चाहो। निराकारका करो चाहे साकारका, चाहे निर्गुणका करो चाहे सगुणका, उसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

१७२. वाणीसे भगवन्नामका जप, मनसे भगवान्‌का ध्यान, शरीरसे संसारको ईश्वररूप नारायण समझकर सबकी सेवा करनी चाहिये।

१७३. **संयम, सेवा, साधना, सत्पुरुषोंका संग।**
इन चारोंके संगसे मोह हो जाय भंग॥

१७४. **गो, गीता, गंगा, गायत्री और गोविन्दका नाम।**
इन पाँचोंकी शरणसे पूरण हो सब काम॥

१७५. लाख काम छोड़कर जिस कामसे परमात्माकी प्राप्ति हो, वही काम करना चाहिये।

१७६. संसारके विषयभोगोंका तथा विषयी पुरुषोंका संग—दोनों ही दुःख देनेवाले हैं। प्रमादी पुरुषोंका संग तो और भी दुःखदायी है।

१७७. श्रद्धा एक ऐसी चीज होती है जहाँ तर्क काममें नहीं आता।

१७८. मनुष्यका जीवन बहुत अल्प है और काम बहुत लम्बा है,

इसलिये परमात्माकी प्राप्तिके लिये तत्परताके साथ कमर कसकर लग जाना चाहिये। जैसे हम रुपया कमानेके लिये कमर कसकर लग रहे हैं, वैसे ही परमात्माकी प्राप्तिके लिये चेष्टा करनेसे परमात्माकी प्राप्ति शीघ्र हो सकती है।

१७९. मनुष्य-जीवन पाकर अपना कल्याण नहीं किया तो जीवन निरर्थक ही हुआ, वह जीवन धिक्कार देनेयोग्य है। यह बात खयालमें रखकर तत्पर होकर साधन, भजन और ध्यानमें लग जाना चाहिये।

१८०. केवल ईश्वरकी भक्तिके प्रतापसे सारे सद्गुण अपने-आप आ जायँगे, अतः इधर उधर मन न लगाकर भगवान्‌की भक्ति करनी चाहिये।

१८१. तीन प्रकारके दोष हैं—मल, विक्षेप और आवरण। ये तीनों दोष भक्तिसे नष्ट हो जाते हैं।

१८२. महात्मालोग मान, बड़ाई, कीर्ति जीते-जी और मरनेके बाद भी हृदयसे नहीं चाहते। महात्मा पुरुष अमानी होते हैं।

१८३. जो ईश्वरका भक्त नहीं है, उसीको काम, क्रोध आदि सताते हैं। जो ईश्वरका भक्त है, उसको काम-क्रोधादि नहीं सता सकते।

१८४. अपने शरीरसे जहाँतक बन सके, निष्कामभावसे दूसरोंकी सेवा करनी चाहिये। यह भी भजन-ध्यानके समान ही है।

१८५. जहाँतक हो सके छोटे-से-छोटे जीवको भी अपने द्वारा नुकसान नहीं हो, इसके लिये विशेष चेष्टा करनी चाहिये।

१८६. भगवान्‌के नामजपका नाम भजन है, भगवान्‌के स्वरूपके चिन्तनका नाम ध्यान है।

१८७. भगवान्‌के भजन-ध्यानसे दुर्गुण-दुर्भाव रह ही नहीं सकते। सद्भाव अपने-आप आ जाते हैं।

१८८. भजन, ध्यान, सत्पुरुषोंका संग, स्वाध्याय, दु:खियोंकी सेवा, मन-इन्द्रियोंका संयम और संसारसे वैराग्य—इन सात चीजोंको धारण करनेसे परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है।

१८९. किसीकी भी कोई निन्दा करता है, वह परमात्माकी ही निन्दा करता है।

१९०. मेरी दृष्टिमें गीतासे बढ़कर संसारमें और कोई शास्त्र है ही नहीं, गीता वेदसे भी बढ़कर है।

१९१. गीता भगवान्‌की साक्षात् वाङ्मयी मूर्ति है।

१९२. गीता भगवान्‌के साक्षात् श्वास हैं।

१९३. गीताजीका अर्थसहित, भावसहित अवश्य ही मनन करना चाहिये।

१९४. तुलसीकृत रामायण बहुत अच्छा ग्रन्थ है, उसका भी मनन करना चाहिये।

१९५. गीता हमलोगोंको त्याग सिखलाती है—आसक्तिका त्याग, अहंताका त्याग, ममताका त्याग। इसी प्रकार रामायण भी हमलोगोंको त्याग सिखलाती है।

१९६. हरेक माता, भाई-बहनोंको त्याग सीखना चाहिये। स्वार्थ-त्यागके बिना कल्याण नहीं हो सकता।

१९७. किसीके साथ हमारा व्यवहार हो, वहाँ यह सोचना चाहिये कि दूसरेका हित कैसे हो, दूसरेका हित कैसे हो।

१९८. जैसे लोभी आदमी यह सोचता रहता है कि पैसा कैसे मिले, पैसा कैसे मिले, उसी प्रकार साधकको यह सोचते रहना चाहिये कि भगवान् कैसे मिलें, भगवान् कैसे मिलें। हर वक्त यही सोचते रहनेसे भगवान्‌की प्राप्तिमें कोई संदेह नहीं है।

१९९. जितना आपमें हर्ष-शोक है, जितना आपमें राग-द्वेष है,

उतना ही आप भगवान्‌से दूर हैं। जितनी आपमें समता है, उतने ही आप भगवान्‌के निकट हैं।

२००. त्यागका पाठ पढ़ना चाहिये।

२०१. हमलोगोंको परमात्माकी प्राप्तिमें विलम्ब हो रहा है, इसका कारण है कि हमलोगोंमें स्वार्थका त्याग नहीं है। इसलिये स्वार्थका त्याग करना चाहिये।

२०२. मानको विषके समान समझना चाहिये, अपमानको अमृतके समान समझना चाहिये।

२०३. वाणीसे भगवान्‌के नामका जप, मनसे भगवान्‌का ध्यान और शरीरसे सेवा करनी चाहिये।

२०४. अपनी इच्छाका त्याग करके भगवान्‌की इच्छाके अनुसार चलो, फिर भगवान् नहीं मिलें तो हमारा कान पकड़ो।

२०५. प्रयत्न तो यह करना चाहिये कि सुख और दुःख दोनोंसे पिण्ड छूट जाय।

२०६. दुःख होता है जड़-चेतनके संयोगसे। केवल जड़से दुःख नहीं होता, केवल चेतनमें भी दुःख नहीं होता। दुःख होता है दोनोंके संयोगसे, दोनोंका संयोग होता है अविद्यासे; अतः अविद्याका नाश करना चाहिये। अविद्याका नाश होता है परमात्माका तत्त्व जाननेसे, परमात्माका तत्त्व जाननेका उपाय है हर वक्त भगवान्‌की स्मृति, हर वक्त भगवान्‌को याद रखना।

२०७. स्वार्थ-त्याग करके लोक सेवा करनी भी बहुत ऊँचे दर्जेकी चीज है।

२०८. इन दोसे ही कल्याण हो सकता है—उत्तम आचरण और ईश्वरकी भक्ति।

२०९. कंचन, कामिनी, मान, बड़ाई, ईर्ष्या-इन सबको त्यागकर जो परमात्मामें रमण करता है, वही धन्य है।

२१०. भगवान्‌का नाम कल्पवृक्ष है, इससे जो चाहे सो मिल सकता है, यदि निष्कामभावसे लिया जाय तो परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है।

२११. काम, क्रोध, लोभ—ये तीन नरकके द्वार हैं। ईश्वरकी भक्तिसे ये भाग जाते हैं, इसलिये ईश्वरसे प्रेम करना चाहिये।

२१२. पाप कुपथ्य है, इसलिये पाप नहीं करना चाहिये।

२१३. सबसे प्रेम छोड़कर भगवान्‌से प्रेम करो। परमात्माको छोड़कर औरोंसे प्रेम करनेके कारण ही तो करोड़ों जन्मोंतक भटकते रहे। भगवान्‌से प्रेम हुए बिना भटकना नहीं मिटेगा।

२१४. अनिच्छा-परेच्छासे जो कुछ प्राप्त हो, उसको भगवान्‌का विधान समझकर सदा प्रसन्न रहना चाहिये। हम अपनी तरफसे जो कुछ करें, वह भगवान्‌के आज्ञानुसार ही करना चाहिये।

२१५. हमें सुख-दुःख तो मिलता है प्रारब्धसे और हर्ष-शोक होता है अज्ञानसे।

२१६. हर्ष, शोक, चिन्ता, भय—ये सब ईश्वरकी भक्तिसे नष्ट हो सकते हैं।

२१७. अधिक-से-अधिक समय एकान्तके लिये निकालना चाहिये और एकान्तमें भगवान्‌का बड़ा चित्र सामने रखकर नेत्र खोलकर भगवान्‌की तरफ देखते रहना चाहिये तथा प्रेमसे और प्रेममें मग्न होकर भगवान्‌के नेत्रोंमें नेत्र मिलाकर देखता रहे और यह विश्वास करे कि भगवान् मेरे अवगुणोंकी

तरफ न देखकर प्रकट होकर दर्शन देंगे एवं वाणीके द्वारा या श्वासके द्वारा नित्य-निरन्तर भगवान्‌के नामका चिन्तन-जप करना चाहिये।

२१८. चलते, उठते, बैठते, खाते, पीते, सोते, जागते, काम करते—सब समय नित्य-निरन्तर भगवान्‌के नामका जप करना चाहिये और मनसे भगवान्‌को अपने साथ समझकर प्रेमसे उनके मुखकी तरफ देखते रहना चाहिये।

२१९. सोनेके समय भगवान्‌के नामको जपते-जपते या गीताजीका पाठ या विष्णुसहस्रनामका पाठ करते-करते सोना चाहिये, ऐसा करनेसे स्वप्न अच्छा आयेगा।

२२०. जबतक परमात्माकी प्राप्ति नहीं हो, तबतक साधनसे संतोष कभी नहीं करना चाहिये। उत्तरोत्तर साधन बढ़ाते रहना चाहिये।

२२१. जिस प्रकार श्वास स्वाभाविक चलता रहता है, उसी प्रकार भगवान्‌का भजन स्वाभाविक होना चाहिये। जिस प्रकार श्वास रुकनेसे कठिनता पड़ती है, उसी प्रकार जीवनका आधार भजन हो जाय, यानी जीवन भजनमय बन जाय।

२२२. एक तरफ प्राण छोड़ना पड़े, एक तरफ भगवान्‌को छोड़ना पड़े तो प्राणोंको छोड़ देना चाहिये, भगवान्‌को नहीं छोड़ना चाहिये।

२२३. **प्रश्न**—भगवान्‌की दया सभीपर है ही, फिर सभीका भगवान्‌में प्रेम क्यों नहीं होता?

उत्तर—भगवान्‌की शरण हुए बिना दया नहीं फलती।

२२४. भगवान्‌की शरण होनेका उपाय यह है कि अनुकूल-प्रतिकूल जो कुछ भी आकर प्राप्त हो, भगवान्‌के प्रत्येक

विधानमें भगवान्‌की दयाको देखकर सदा प्रसन्न रहे।

२२५. कोई संकट आकर प्राप्त हो जाय तो प्राणोंका त्याग भले ही कर दे, लेकिन ईश्वर और धर्मका त्याग नहीं करना चाहिये।

२२६. नित्य वस्तुके लिये अनित्य वस्तुका त्याग कर देना चाहिये, लेकिन असत्यके लिये सत्य वस्तुका त्याग नहीं करना चाहिये।

२२७. धीरता, वीरता, गम्भीरता—यह तीन वस्तु भूलनेकी नहीं है।

२२८. सबसे बढ़कर दयाका पात्र वही है, जो दुःखसे पीड़ित हो, भयमें फँसा हुआ हो।

२२९. सबको अभय देकर संसारमें रहना चाहिये अर्थात् अपनेद्वारा किसीको भय नहीं होना चाहिये।

२३०. जितने उत्तम-उत्तम गुण हैं, उनको धारण करना चाहिये। जैसे भरतजी महाराज गुणोंके सागर थे, वैसे ही हमलोगोंको गुणोंका सागर बनना चाहिये।

२३१. जितने अवगुण, दुराचार हैं, उन सबको निकाल देना चाहिये।

२३२. पहले परमात्माकी प्राप्ति कर लो, फिर दूसरा काम करो। परमात्माकी प्राप्ति अमृत है, विषयभोग विष है।

२३३. कितनी भी आपत्ति पड़नेपर धर्मका और ईश्वरका त्याग नहीं करना चाहिये। धर्म और ईश्वरका त्याग नहीं करोगे तो सारी दुनिया एक तरफ, तुम एक तरफ; तुम्हारी ही विजय होगी।

२३४. हर समय चलते, उठते, बैठते भगवान्‌की चर्चा चलनी चाहिये, इससे बड़ी भारी शान्ति मिलती है? चित्तमें जो नाना प्रकारके विक्षेप होते हैं वे सब नष्ट हो जाते हैं।

२३५. भगवान्‌के नामका जप मनसे, ध्यानसहित, निष्कामभावसे, गुप्तरूपसे तथा अहंकाररहित होकर करनेसे बहुत जल्दी लाभ हो सकता है, करके देखो।

२३६. लाख रुपया खर्च करनेपर भी एक मिनटका समय नहीं मिल सकता, इसलिये समयको बड़ी सावधानीके साथ बिताना चाहिये।

२३७. स्वार्थका त्याग करके जो कर्म किया जाता है उसका बड़ा भारी फल है।

२३८. कोई संसारी बात चलावे तो वहाँसे नारायण-नारायण करके हट जाना चाहिये।

२३९. पूर्वमें कितने कुटुम्बको छोड़कर आये हैं और अब भी छोड़कर जायँगे, फिर यह ऐश्वर्य क्या काम आवेगा?

२४०. उसी धनका संग्रह करना चाहिये जिससे परमात्माकी प्राप्ति हो जाय।

२४१. मन, बुद्धि, प्राण और इन्द्रियोंका सुधार करना चाहिये।

१. मनका सुधार—इसमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या आदि कूड़ा-करकट भरा हुआ है, इनको निकालकर इसमें भगवान्‌का भजन-ध्यान आदि भरना चाहिये।

२. बुद्धिका सुधार—बुद्धिमें भगवान्‌का निश्चय करना चाहिये।

३. इन्द्रियोंका सुधार—इन्द्रियोंमें अच्छे भाव भरने चाहिये। नेत्रोंसे समभावसे देखना चाहिये, वाणीसे कटु वचन न बोले; सत्य हो, वही बोले। सब इन्द्रियोंको ईश्वरकी भक्ति तथा महापुरुषोंकी सेवामें लगा देना चाहिये। ऐसा प्रयास हो कि भगवान्‌का भजन निरन्तर स्वाभाविक होने लगे।

२४२. **सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।**
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥ (गीता २।३८)

जय-पराजय, लाभ-हानि और सुख-दुःखको समान समझकर, उसके बाद युद्धके लिये तैयार हो जा; इस प्रकार युद्ध करनेमें तू पापको नहीं प्राप्त होगा। ऐसा समझकर युद्ध करनेमें भी पाप नहीं लगता, बल्कि यह कल्याण करनेवाला है।

२४३. महात्मा पुरुष अपना परिचय क्यों नहीं देते? वे इसमें लाभ नहीं समझते, तभी तो अपना परिचय नहीं देते, इसी प्रकार भगवान् भी अपना परिचय बिना प्रयोजन नहीं देते। दृष्टान्त—

१. उत्तंक ऋषिको बिना प्रयोजन परिचय देनेसे फल क्या हुआ?
२. उसी प्रकार दुर्योधनको विराट् स्वरूप दिखानेका उसपर क्या प्रभाव पड़ा? उसने कहा यह सब माया है। इसलिये हमारे तो यही बात जँची कि भगवान् जो कुछ कर रहे हैं वही ठीक कर रहे हैं।

२४४. महात्माको जो आनन्द है, उसके मुकाबलेमें त्रिलोकीका राज्य भी कोई चीज नहीं है, मनुष्य-जीवन भी कोई चीज नहीं है। इसलिये *'जो सिर साटे हरि मिले तो लीजे पुनि दौर।'*

२४५. मनुष्यके लिये दो बात है एक तो ईश्वरकी भक्ति, दूसरी दुःखी और अनाथोंकी सेवा।

२४६. एक ही भगवान् अनेक रूपोंमें दीख रहे हैं, इसलिये सबकी सेवा भगवान्‌की ही सेवा है।

२४७. भक्तिके मार्गमें तो ईश्वर, जीव, प्रकृति तीन मानते हैं। ज्ञानके मार्गमें एक ब्रह्म ही मानते हैं। यह दोनों मार्गोंकी अलग-

अलग मान्यता है, असली बात तो यह है कि इन दोनोंका फल एक ही है, वह वर्णनमें नहीं आ सकता।

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम्॥
यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति॥

(गीता ५। ४-५)

उपर्युक्त संन्यास और कर्मयोगको मूर्खलोग पृथक्-पृथक् फल देनेवाले कहते हैं न कि पण्डितजन, क्योंकि दोनोंमेंसे एकमें भी सम्यक् प्रकारसे स्थित पुरुष दोनोंके फलरूप परमात्माको प्राप्त होता है।

ज्ञानयोगियोंद्वारा जो परमधाम प्राप्त किया जाता है, कर्मयोगियोंद्वारा भी वही प्राप्त किया जाता है। इसलिये जो पुरुष ज्ञानयोग और कर्मयोगको फलरूपमें एक देखता है, वही यथार्थ देखता है।

२४८. चाहे भक्त हो चाहे ज्ञानी हो, समता, क्षमा, अहंकारका नाश दोनोंमें ही आयेगा। यदि समता नहीं है तो वह योगी योगी नहीं, ज्ञानी ज्ञानी नहीं, भक्त भक्त नहीं।

२४९. जो महात्मा होगा वह भारी संकट पड़नेपर भी विचलित नहीं होगा।

२५०. संसारमें प्रीति ही मृत्यु है, ईश्वरमें प्रीति ही अमृत है।

२५१. ध्यानमें सहायक हैं—वैराग्य, उपरामता, एकान्त, स्वाध्याय, सत्संग और जप। वैराग्य दिखाऊ नहीं होना चाहिये, भीतरसे होना चाहिये।

२५२. अपनी चीज दूसरेके काममें आ जाय तो अपना अहोभाग्य समझे।

२५३. ईश्वरके यहाँ भगवान्‌के भजनकी कीमत है। गहने-वस्त्रकी कोई कीमत नहीं।

२५४. भगवान्‌के समान तो भगवान् ही हैं, दूसरा हो तो बतलाया जाय।

२५५. महात्मा पुरुष जहाँ बैठकर ध्यान करते हों, वहाँ बैठकर ध्यान करनेसे ध्यान लग जाता है। श्रद्धालुपर ज्यादा प्रभाव पड़ता है, कम श्रद्धा हो, उसपर कम प्रभाव पड़ता है।

२५६. अच्छी नीयतसे जो साधन करता है, परमात्मा उसकी रक्षा करते हैं। हमलोगोंको अच्छी नीयतसे साधन करना चाहिये।

२५७. महात्मामें स्वार्थ, भोग, आराम और कामनाका त्याग होता है, वे आप्तकाम होते हैं।

२५८. महात्मा और ईश्वर सब जगह होते हैं।

२५९. परमात्माकी स्थिति सर्वत्र होती है, महात्माकी स्थिति परमात्मामें होती है, इसलिये महात्माकी स्थिति भी सर्वत्र होती है। महात्माकी छत्रछायामें रहनेसे लाभ होता है, छत्र-छायाका अर्थ है आश्रय।

२६०. महात्मा जीवित रहते हैं उस वक्त तो लाभ होता ही है, उनके परलोक सिधारनेपर भी जबतक उनका चिह्न रहेगा, तबतक लाभ होता ही रहेगा, जैसे तुलसीदासजी।

२६१. जो महात्माका चिन्तन करता है, उसको लाभ होता है। महात्मा जिसका चिन्तन करता है, उसको भी वैसा ही लाभ होता है।

२६२. मनुष्य चाहे पवित्र हो चाहे अपवित्र हो, भगवान्‌का नाम लेनेसे पवित्र हो जाता है।

२६३. संसारी पदार्थोंकी आसक्ति छोड़कर स्नेह-ममतारहित होना चाहिये।

२६४. मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा तथा स्वार्थका त्याग करके निष्कामभावसे विचरण करनेवाला बहुत अच्छा लाभ उठा सकता है।

२६५. यदि कल्याणकी इच्छा है तो निष्कामभावकी तरफ खयाल रखे।

२६६. राग-द्वेषसे रहित होकर सम रहना चाहिये, किसी कारणको लेकर विषमता नहीं आनी चाहिये।

२६७. इतने दिनोंके अनुभवकी बात है—ईश्वरकी भक्ति और निष्काम-भाव अर्थात् स्वार्थका त्याग— ये दो बातें बहुत दामी हैं।

२६८. भगवान्‌को छोड़कर स्त्री-पुत्रसे दोस्ती करके जन्म व्यर्थ नहीं खोना चाहिये। सबसे बढ़कर भगवान् हैं, दोस्ती उन्हींसे करनी चाहिये।

२६९. सत्संगके बीचमें उठकर नहीं जाना चाहिये, सत्संगमें बाधा आती है, यदि बीचमें जानेकी आशंका हो तो पीछे बैठ जाय, जिसको नींद आती हो वह भी पीछे बैठे।

२७०. तीन चीजोंमें संतोष नहीं करना चाहिये। विद्या, दान देनेमें, साधन करनेमें, साधन करता ही रहे।

२७१. प्राण छोड़ देना चाहिये, किन्तु ईश्वरकी भक्ति और धर्म नहीं छोड़ना चाहिये।

२७२. जैसे यहाँ वर्षाकी झड़ी लगी है, वैसे ही भजन-ध्यानकी झड़ी लगा देनी चाहिये। हमें मंजिलपर पहुँचना है, इसलिये कमर कसकर चलना चाहिये।

२७३. गीताप्रेस भगवान्‌की ही है, गीताप्रेसका काम भगवान्‌का काम है। जिसकी गीताप्रेसमें ममता जितनी अधिक है वह उतना ही भगवान्‌के निकट है।

२७४. प्रश्न—हम गीताप्रेसके उपयोगमें ज्यादा-से-ज्यादा कैसे आयें?
उत्तर—स्वार्थका त्याग करके, आराम, मान, बड़ाईका त्याग करनेसे उपयोगमें आ सकते हैं।

२७५. प्रश्न—मैं तो आपकी सेवा करना चाहता हूँ।

उत्तर—गीताप्रेसकी सेवा ही मेरी सेवा है।

२७६. निन्दा करो तो अपनी करो, स्तुति करो तो दूसरोंकी करो।

२७७. अपने गुणोंको छिपाये और अवगुणोंको प्रकट करे तथा दूसरोंके अवगुणोंको छिपाये और गुणोंको प्रकट करे, यह कल्याणका सरल मार्ग है।

२७८. सत्संग, भजन, ध्यानमें प्रारब्ध बाधा नहीं डाल सकता। तीव्र इच्छा हो जाय तो नया प्रारब्ध भी बनता है।

२७९. एक नम्बरका भाव तो यही है—सबको नारायणका स्वरूप समझना। सबकी सेवा ही नारायणकी सेवा है।

२८०. मेरा गीताके अर्थमें थोड़ा प्रवेश हुआ, तभी तो आपको थोड़ा बता पाता हूँ।

२८१. जिस तरह भगवान्‌का सबमें प्रवेश है यानी भगवान् व्यापक हैं, उसी तरह अपने लोगोंका गीतामें प्रवेश होना चाहिये यानी हमारे रोम-रोममें गीता होनी चाहिये।

२८२. कल्याण तो इनमेंसे किसी एक ही बातसे हो जाय—

(क) गीताजीमें प्रवेश हो जाय, बस, इतनेमें ही मामला समाप्त है।

(ख) सबको नारायणका स्वरूप समझकर सेवा करे, इतनेमें ही कल्याण हो जायगा।

(ग) गीताजीका एक ही श्लोक धारण कर ले, इतनेमें ही काम बन जायगा।

२८३. त्यागता ही चला जाय, त्याग ही सर्वश्रेष्ठ है। सर्वत्यागी बन जाय। पहले कंचन-कामिनीका त्याग करे, शरीरसे ही नहीं, मनसे त्याग करे, पीछे मनका त्याग करे, पीछे बुद्धिका त्याग करे, पीछे अहंकारका त्याग करे, बस मुक्त हो जाय।

२८४. संसारी बातोंसे उपराम रहना चाहिये। आपका क्या रोजगार है, आपका स्वास्थ्य ठीक है, ऐसी बात भी नहीं करनी चाहिये। सत्संग विषयक बात करनी चाहिये।

२८५. महात्मा निन्दा, स्तुति, मान, अपमान, वैरी और मित्रमें समान रहते हैं।

२८६. हमें तो वही काम करना चाहिये, जिससे यहाँ भी आनन्द हो और वहाँ भी आनन्द हो। वह आनन्द है ईश्वरकी भक्ति, निष्कामभावसे आपसमें प्रेम, निःस्वार्थभावसे परोपकार।

२८७. जो मनुष्य ईश्वर या महात्माके ऊपर निर्भर हो जाता है, उसका काम अनायास ही हो जाता है।

२८८. जो आदमी ईश्वरको मानेगा, उसके द्वारा पाप होगा ही नहीं।

२८९. ईश्वरके कानूनके विरुद्ध चलना ही पाप है।

२९०. जिसको ईश्वरका भरोसा होगा, उसके ऊपर भारी-से-भारी विपत्ति आनेपर भी वह ईश्वरको नहीं छोड़ेगा, जैसे प्रह्लाद।

२९१. सारी त्रिलोकीका सुख तो एक तरफ और भगवान्‌का सुख एक तरफ। भगवान्‌के सामने वह सारी त्रिलोकीका सुख समुद्रमें एक बूँदके समान भी नहीं है। इसलिये सारी त्रिलोकीके ऐश्वर्यको लात मारकर एक भगवान्‌के ध्यानमें ही मस्त रहना चाहिये।

२९२. मैं तो आपको जोरसे कहता हूँ, आपको परमात्माके आगे नित्य रोना चाहिये, अन्यथा आपके ऊपर बहुत भारी विपत्ति आनेवाली है। मरनेके बाद पशु-पक्षी बन जाओगे तो क्या हाल होगा? मनुष्य-जीवन क्या बरबाद करनेके लिये है? अपना जीवन तो प्रभुसे प्रेम करनेके लिये मिला है।

२९३. लोग कहते हैं काम नहीं है। अरे! काम तो बहुत है। जबतक तुम्हारी आत्माका कल्याण नहीं हो, तबतक कैसे

कहते हो काम नहीं है, क्या तुम योगारूढ़ हो गये? अच्छी नीयतसे तत्पर होकर भगवान्‌के भजनमें लग जाय तो बहुत जल्दी काम बन सकता है।

२९४. जिसने मनुष्य-जन्म पाकर अपनी आत्माका कल्याण नहीं किया उसको धिक्कार है, उसके माता-पिताको धिक्कार है।

२९५. प्रेमसे किया हुआ भजन चाहे जैसे हो, उससे भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं। बिना प्रेमका भजन दामी नहीं होता।

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रकट होहिं मैं जाना॥

२९६. निष्कामभावसे हमारा साधन हो तो भगवान् तुरन्त प्रकट हो सकते हैं। मान, बड़ाई सबको ठुकरा देना चाहिये और श्रद्धा-प्रेमसे भजन करना चाहिये।

२९७. ऐसी कोई बात नहीं है जिसको मनुष्य नहीं कर सके। ईश्वरकी अपने ऊपर बड़ी कृपा है। ऐसे मनुष्य-जीवनको पाकर भी वृथा खोओगे तो पीछे बहुत पछताना पड़ेगा।

२९८. महापुरुष और शास्त्र वचनद्वारा चेतावनी दे रहे हैं, जबतक मृत्यु दूर है, इसके पहले-पहले जो कुछ करना हो कर लो। अधिकार ज्यादा दिनका नहीं है, यह विचारकर जोशके साथ तत्परतापूर्वक भजन-ध्यानमें लग जाना चाहिये।

२९९. स्वार्थका त्याग करना चाहिये, किन्तु अब तो सब स्वार्थी हो गये। जहाँ स्वार्थ है वहाँ सर्वनाश है। स्वार्थसे यह लोक और परलोक दोनों ही नष्ट हो जाते हैं।

३००. जहाँ त्याग है वहाँ कल्याण है, जहाँ लोभ है वहाँ नरक है।

३०१. जो भगवान्‌का उच्चकोटिका भक्त होता है, उसको भगवान् छोड़ते नहीं हैं, उसको हर वक्त साथ रखते हैं, उसके शान्ति-सुखका पार नहीं रहता।

३०२. हम अपने धनको, बलको, वाणीको साधनमें लगायें तो

कल्याण हो सकता है। दूसरोंको दुःख देनेमें लगायेंगे तो पतन हो जायगा।

३०३. कल होली है, होलीमें तो पापोंकी होली कर डालनी चाहिये। अपनी वाणीद्वारा श्रीराम, कृष्ण, ध्रुव, प्रह्लादकी धमाल गायें तो हमारा कल्याण होता है। उसी वाणीद्वारा बुरी धमाल गायें तो और पाप पल्ले बँधते हैं।

३०४. संसारके भोगोंमें आप शान्ति खोज रहे हैं, यह तो आपकी मूर्खता है। शान्ति परमात्माके ध्यानमें है। ध्यानके समान और किसी चीजमें सुख नहीं है। ध्यानका फल भगवत्प्राप्ति है।

३०५. वह ध्यानका सुख आपको मिल जाय तो त्रिलोकीका सुख आपको काकविष्ठाके समान लगने लगेगा।

३०६. मनुष्यको बाकीका जीवन ईश्वरकी भक्तिमें, परोपकार और माता-पिताकी सेवामें लगाना चाहिये। इन सबका लक्ष्य होना चाहिये भगवान्‌में अनन्य प्रेम।

३०७. बड़ोंकी और सब बात माननी चाहिये, उनकी सेवा करनी चाहिये, किन्तु भगवान्‌की भक्तिके लिये मना करें तो वह बात नहीं माननी चाहिये। घरवाले जितना भी कष्ट देवें, सह ले, परन्तु ईश्वरकी भक्ति नहीं छोड़नी चाहिये। उदाहरण प्रह्लादका।

३०८. मनुष्य-जीवनको पाकर इसे उत्तरोत्तर उन्नत बनाना चाहिये। धन संग्रह करना, विषय-भोग भोगना उन्नति नहीं है। यह शरीर छूटनेके बाद इस संग्रहसे, भोगोंसे आपका कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहेगा। असली धन भगवान्‌का भजन है, उसका संग्रह करना चाहिये।

३०९. जबतक तुम्हारी मृत्यु दूर है और देहमें प्राण हैं, तबतक जो कुछ पुण्य, धर्म, भजन, साधन करना हो सो कर लो, नहीं

तो मरनेके बाद दुर्गति होगी।

३१०. निष्काम उपासना, निष्काम कर्म यह बड़ी ऊँची चीज है, लेकिन इतनी सूक्ष्म चीज यदि समझमें नहीं आये तो भगवान्‌के दर्शनकी, भगवान्‌की प्राप्तिकी इच्छा रखे। वह भी निष्कामके ही तुल्य है।

३११. अपने तो रात-दिन भगवान्‌की चर्चा चलती रहे, फिर चाहे नरकमें ही पड़े रहो, कोई परवाह नहीं। भगवत्-चर्चा, भगवान्‌की बातें होती रहें।

३१२. नास्तिक, पामर, प्रमादी पुरुषोंका संग नहीं करना चाहिये। धर्म, ईश्वर, महात्मा किसीको नहीं छोड़ते, लोग ही उनको छोड़ देते हैं।

३१३. भगवान्‌की स्मृति और स्वार्थका त्याग-ये दो बातें बहुत दामी हैं, इनसे सारे दोष अपने आप चले जाते हैं।

३१४. हर समय यह विचार करता रहे कि अपने द्वारा दूसरोंका हित कैसे हो, जैसे लोभी आदमी रुपयोंके लिये सोचता रहता है।

३१५. परोपकारके साथ-साथ निष्कामभाव हो, यह बहुत ऊँचे दर्जेकी बात है। मनमें दया और परोपकारके भाव हों, तब ऐसे भाव पैदा होते हैं।

३१६. दूसरोंको दु:खी देखकर उनके सहायक बनें।

३१७. यदि त्याग नहीं है तो चाहे कितना ही गुण हो, कोई कीमत नहीं है। त्यागकी ज्यादा कीमत है।

३१८. ऐसा मौका मिलनेका है ही नहीं, ऐसा मौका पाकर जल्दी-से-जल्दी अपनी आत्माका कल्याण (ईश्वरकी प्राप्ति) कर लेना चाहिये।

३१९. भगवान्‌का सच्चा भक्त तो वही है जो भगवान्‌के कामके लिये रत रहता है और आसक्ति तथा अहंकारका त्यागकर

तन, मन, धनसे सब कुछ भगवान्‌के अर्पण कर देता है।

३२०. भगवान्‌की स्मृति और स्वार्थका त्याग—ये दोनों बहुत दामी बात हैं। ये दोनों रहें तो कल्याणमें शंका ही क्या है? इन दोनोंमें एक भी हो तो कल्याण हो सकता है।

३२१. ईश्वरका ध्यान चाहे साकारका करो चाहे निराकारका करो। आपको यदि आनन्दकी आवश्यकता है तो परमात्माका ध्यान करें, दु:खकी आवश्यकता है तो संसारका ध्यान करें। संसारका चिन्तन ही दु:खरूप है।

३२२. **प्रश्न**—संसारका चिन्तन नहीं करेंगे तो शरीर कैसे रहेगा?
उत्तर—नहीं रहे तो मत रहे। इतने दिन शरीरको रखकर क्या किया? इस तरह परमात्माका चिन्तन करते तो परमात्माकी प्राप्ति हो जाती। परमात्माका चिन्तन बहुत उच्चकोटिकी चीज है।

३२३. जप-ध्यानसे ही बुद्धि ठीक रह सकती है। यह निरन्तर होना चाहिये और नि:स्वार्थभावसे सेवा करनी चाहिये, इसकी ताजगीके लिये सत्संग करना चाहिये। सत्संग नहीं मिले तो स्वाध्याय करना चाहिये।

३२४. अन्त:करणमें विषय-आसक्तिरूपी छूरा घुस गया, उसे निकालना चाहिये, उसके बदलेमें भगवान्‌का भजन-ध्यान करना चाहिये।

३२५. मानसिक जप करना चाहिये, यह बहुत ऊँचे दर्जेकी चीज है। जप ध्यानसहित हो तो और अच्छी बात है।

३२६. वाणीसे या तो भगवत्-विषयकी बात करनी चाहिये, अन्यथा मौन रहना चाहिये। परोपकारकी बात भी भगवत्-विषयकी बात है। संसारी बात नहीं बोलनी चाहिये।

३२७. जो भगवान्‌को सर्वोपरि समझ लेता है, वह भगवान्‌को भूल

नहीं सकता। जो भगवान्‌को सुहृद् समझ लेता है, वह खुद सुहृद् बन जाता है। भगवान्‌में जो लक्षण होते हैं, वह भक्तमें आ जाते हैं।

३२८. भगवान्‌का अनन्य चिन्तन करना चाहिये। निरन्तर चिन्तनकी गीतामें बड़ी महिमा आयी है।

३२९. सम्बन्ध उसीके साथ करना चाहिये जिसके साथ फिर वियोग होवे ही नहीं, वह एक परमात्मा ही है, निरन्तर परमात्माका अभ्यास करना चाहिये।

३३०. मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा, कंचन, कामिनी और शरीरका आराम ये छः ग्रह हैं, महान् शत्रु हैं, इनको मार डालना चाहिये। इसके लिये भगवान्‌के सामने दिल खोलकर रोना चाहिये, प्रार्थना करनी चाहिये। उनकी कृपासे सब कुछ हो सकता है।

३३१. समय-समयपर इस श्लोकको याद करना चाहिये—

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥

(गीता २। ७)

कायरतारूप दोषसे उपहत हुए स्वभाववाला तथा धर्मके विषयमें मोहितचित्त हुआ मैं आपसे पूछता हूँ कि जो साधन निश्चित कल्याणकारक हो, वह मेरे लिये कहिये; क्योंकि मैं आपका शिष्य हूँ, इसलिये आपके शरण हुए मुझको शिक्षा दीजिये।

३३२. राग-द्वेष, अहंकार आदिकी जड़ उखाड़ देनी चाहिये।

३३३. अपने द्वारा जो अच्छे काम होते हैं उनमें भगवान्‌की कृपा समझनी चाहिये। खराब काम होते हैं उनमें अपने स्वभावका दोष समझना चाहिये।

३३४. जो मान-बड़ाईकी इच्छा करता है, वह तो विषकी इच्छा करता है।

३३५. परमात्माकी प्राप्तिकी इच्छा वालेको मान-बड़ाई ठुकरा देना चाहिये। मान-बड़ाई मिलती हो ऐसे स्थानमें नहीं जाना चाहिये।

३३६. हमें पद-पदपर भगवान्‌की दया समझनी चाहिये, शान्ति उनके अन्दर भरी पड़ी है।

३३७. अनिच्छा, परेच्छासे जो कुछ होवे उसमें ईश्वरका विधान समझकर खूब प्रसन्न होना चाहिये।

३३८. अपनी इच्छासे जो कुछ करे वह ईश्वरकी आज्ञाके अनुसार करे। शास्त्रकी आज्ञा, महात्माकी आज्ञा, ईश्वरकी आज्ञा—सब एक ही है।

३३९. बहुत-से मनुष्य कहते हैं कि भगवान्‌का भजन-ध्यान तो हम लिखाकर ही नहीं लाये! अरे मूर्ख! ऐसे क्यों मानता है? प्रारब्धपर दोष क्यों मढ़ता है? यह तेरी ही कमजोरी है।

३४०. प्रारब्धकी यह सामर्थ्य नहीं है कि भगवान्‌के भजन-ध्यानको रोक सके, यह कमजोर आदमियोंको मारता है, इसलिये जोश रखना चाहिये। प्रारब्ध भजन-ध्यानमें विघ्न नहीं पहुँचा सकता, बल्कि मैं तो यह कहता हूँ कि बीमारीमें भजन-ध्यान और तेज होना चाहिये। प्रारब्ध भगवान्‌की प्राप्तिमें बाधा नहीं डाल सकता। पहुँचे हुए पुरुषोंको तो विघ्न डाल ही क्या सकता है, ऊँचे साधकको भी विघ्न नहीं पहुँचा सकता।

३४१. प्रश्न—प्रह्लादजी इतनी विपत्तिमें भी नहीं घबराये, इसका क्या कारण है?

उत्तर—नारदजीका उपदेश था, तुम भी नारदजीको खोजो।

३४२. महापुरुषोंका तो चलना, फिरना, घास काटना और मारना-काटना—भी सभी क्रियाएँ समान हो जाती हैं।

३४३. चाहे दुःखसे चाहे सुखसे हो, निरन्तर भगवान्‌की स्मृति रहनी चाहिये।

३४४. हर समय प्रसन्न रहना चाहिये।

३४५. कभी रूठना नहीं चाहिये, रूठे तो भोगोंसे रूठे। द्वेष करे तो भोगोंसे करे। क्रोध करे तो क्रोधसे करे, क्रोधसे क्रोधको ही जला डाले।

३४६. हर समय प्रसन्न रहना चाहिये, चित्तको कभी मलिन नहीं करना चाहिये, चित्तको मलिन करना तो अपने गलेमें छूरा लगाना है।

३४७. जिस प्रकार भगवान्‌की स्मृति मुक्ति देनेवाली है, उसी प्रकार भगवान्‌की दयाको याद करना भी मुक्ति देनेवाला है, भगवान्‌का जप-ध्यान भी मुक्ति देनेवाला है।

३४८. रूठनेमें और त्यागमें बहुत अन्तर है, रूठना अवगुण है, त्याग गुण है।

३४९. वैराग्य गुण है, द्वेष अवगुण है।

३५०. परमात्माकी प्राप्तिरूपी धनका संग्रह करे।

३५१. कामना करे तो भगवान्‌के दर्शनोंकी, अपनी आत्माके कल्याणकी कामना करे; हे नाथ! हे गोविन्द! हे हरि! दर्शन दें।

३५२. दो मोहन मन्त्र हैं—एक तो किसीकी निन्दा नहीं करनी, गुण गाना, दूसरा मंत्र है—सबका हित करना, सर्वभूतहिते रताः सबकी सेवा करे।

३५३. संसारका चिन्तन करते हो, संसारको भगवद्भावमें उलट दो, संसारका भगवद्बुद्धिसे चिन्तन करो। या तो भावको उलट

दो या चिन्तनको उलट दो।

३५४. परमात्माकी प्राप्ति कोई कठिन बात नहीं है, यह बहुत ही सहज काम है।

३५५. भगवान्‌के नारायण नामका प्रयोग सभी कामोंमें किया जा सकता है, यदि नारायणको बुलाना हो तो ऐसे कीर्तन करे— 'आओ नारायण नारायण नारायण, आओ नारायण नारायण नारायण', यदि सबको कीर्तनमें बोलनेके लिये कहना हो तो ऐसे करे—'बोलो नारायण नारायण नारायण' और भगवान्‌को अपने साथ-साथ कीर्तनमें बुलाना हो तो भी यही कहे—'बोलो नारायण नारायण नारायण।' यदि आतुर आदमीको साहस दिलाना हो तो ऐसे कहे—'भजो नारायण नारायण नारायण', यदि कोई पूछे कि श्रद्धा-प्रेम कैसे हो तो भी ऐसे ही करे—'भजो नारायण नारायण नारायण' और निष्काम भावसे तथा लक्ष्मीजी-सहित भगवान्‌का कीर्तन करना हो तो ऐसे करे—'श्रीमन्नारायण नारायण नारायण।'

३५६. एक नारायणके नामका किसी तरह भी प्रयोग कर सकते हैं, ये सब संकटोंका निवारण करनेवाले हैं।

३५७. परमात्मा सत्य वस्तु है, अन्य सब असत्य वस्तु है, इसलिये सत्यस्वरूप परमात्मामें ही प्रेम करना चाहिये।

३५८. भगवान्‌के रहते हुए कोई मनुष्य दूसरेसे संकट निवारण करनेके लिये कहे तो मूर्खता ही है।

३५९. भगवान्‌का प्यारा बनना चाहिये, भगवान्‌को भजनेवाला पुरुष भगवान्‌को प्यारा लगता है। गीता १२। १३-१४ के अनुसार जिसका लक्षण है, वह भगवान्‌को प्यारा लगता है।

३६०. भगवान्‌का जप-ध्यान निरन्तर करना चाहिये। निरन्तर जप-ध्यान करनेसे भगवान्‌में जो गुण हैं, वे सब-के-सब उसमें

आ जाते हैं।

३६१. यह नामका प्रभाव है कि पापोंकी ढेरीको जलाकर भस्म कर देता है।

३६२. महात्मा भगवान‍्के अपना सर्वस्व अर्पण कर देता है, भगवान् महात्माको अपना सर्वस्व अर्पण कर देते हैं।

३६३. जिस प्रकार बरफमें जल परिपूर्ण है, उसी प्रकार संसारमें भगवान् परिपूर्ण हैं।

३६४. मुझे तो वह आदमी सबसे प्यारा लगता है जो मेरे सिद्धान्तको मानता है, यह बात मैंने भगवान‍्से सीखी है। भगवान‍्ने गीतामें यही कहा है कि मेरे सिद्धान्तको माननेवाला मुझे अतिशय प्यारा है।

३६५. जितने ज्यादा आदमी सत्संगमें आयेंगे उतनी ही ज्यादा दलाली पकेगी।

३६६. एक इलाज हो जाय, जन्म-मरण मिट जाय तो सारा इलाज इसके अन्तर्गत है।

३६७. जो चीज वास्तवमें जैसी है वही बुद्धि होनी चाहिये। वास्तवमें परमात्मा हैं, इसलिये इस संसारमें परमात्मबुद्धि होनी चाहिये।

३६८. हमलोग स्वर्गाश्रममें इसलिये जाते हैं, क्योंकि वहाँके परमाणु शुद्ध हैं, वहाँ ऋषियोंने तपस्या की हुई है, इसलिये वहाँ भजन-ध्यान अच्छा होता है, वहाँ आकाशके परमाणु भी शुद्ध रहते हैं।

३६९. जिस देशमें महापुरुष रहते हैं, वह देश पवित्र हो जाता है।

३७०. ऐसे महापुरुषकी स्वर्गके देवता एवं ब्रह्मादिक देवता भी आशा करते हैं।

३७१. हमलोगोंको यह भाव रखना चाहिये कि सब लोगोंका उद्धार

कैसे हो। भगवान्‌की कृपासे सब कुछ हो सकता है, उनकी शरणसे सब कुछ हो सकता है।

३७२. जो मरनेके समय भगवान्‌का चिन्तन करता हुआ जाता है, वह भगवान्‌को प्राप्त हो जाता है।

३७३. कोई बीमार पड़ जाय तो उसको गीताजी या भगवान्‌का नाम सुनानेकी चेष्टा करनी चाहिये, यदि उसका मृत्युके समय भगवान्‌का चिन्तन करते हुए प्राण निकल गया तो उसका उद्धार हो गया और अपने भी कर्तव्यका पालन हो गया। बीमारकी शारीरिक सेवा और परम सेवा यानी उसके उद्धारका उपाय करना चाहिये। दोनों ही सेवा करनी चाहिये।

३७४. परम सेवाका खयाल रखे, किसीको भगवान्‌की तरफ लगा देना परम सेवा है।

३७५. उन्हींका जन्म संसारमें धन्य है जो अपना ही नहीं, दूसरोंके कल्याणकी भी इच्छा रखता है, हमलोगोंको भी ऐसा ही बनना चाहिये।

३७६. महापुरुषका पहना हुआ वस्त्र, उनकी काममें ली हुई चीज अपने काममें लानी बहुत अच्छी है, किन्तु उनका पहना हुआ जूता हमें नहीं पहनना चाहिये। भरतजी महाराज भगवान्‌की खड़ाऊँ लाये, किन्तु पहनकर नहीं मस्तकपर रखकर लाये।

३७७. अच्छे पुरुषोंका चरण जहाँ पड़े, उसको लाँघना नहीं चाहिये और उसके ऊपर पैर भी नहीं रखना चाहिये। अक्रूरजी भगवान्‌के चरणोंका चिह्न खोजकर उनको दण्डवत् करने लगे।

३७८. जो सबके साथ ही अपना कल्याण चाहता है, वही महापुरुष है।

३७९. नारायण-नारायणके कीर्तनसे यही अर्थ निकालना चाहिये

कि नारायण-ही-नारायण है, नारायणके अतिरिक्त कोई वस्तु है ही नहीं, एक परमात्मा-ही-परमात्मा है, परमात्माके अतिरिक्त कोई वस्तु है ही नहीं।

३८०. नारायणको 'नारायण नारायण'-यह धुन बड़ी प्यारी लगती है, इसलिये रातभर ऐसे ही करता रहे। प्रेम होनेसे ऐसा करते-करते भगवान् भी प्रकट हो सकते हैं।

३८१. जो कोई अपने ऊपर भगवान्‌की दया मानता है, उसीके ऊपर भगवान्‌की दया हो सकती है।

३८२. हमारे ऊपर तो भगवान्‌की बहुत दया है। कहाँ तो हम और कहाँ भगवान्। भगवान्‌की इच्छा है चाहे जिस तरह नचावें। हम भी नाचें और भगवान् भी साथमें नाचें।

३८३. अपने तो भगवान्‌की खूब भक्ति करो, फिर आनन्द-ही-आनन्द है।

३८४. लोग कहते हैं कि भजन-ध्यान करते हैं, किन्तु आनन्द नहीं आता। मैं सोचता हूँ कि क्या कहता है? भजन-ध्यान करे और आनन्द नहीं आये, रोटी खाये और पेट नहीं भरे, यह कैसे सम्भव है?

३८५. भजन-ध्यान करो, फिर आनन्द-ही-आनन्द है।

३८६. भगवान्‌की भक्तिका खूब प्रचार करो।

३८७. आप कहते हैं कि हम तो भगवान्‌को बुलाते हैं, किन्तु भगवान् आते नहीं। आप मोहनकी तरह गोपाल भैयाको बुलायें, फिर देखें कि गोपाल आता है या नहीं।

३८८. मेरा तो यह निश्चय है कि कोई भगवान्‌के ऊपर निर्भर हो जाय तो भगवान् उसको दर्शन देंगे। आपके निश्चय नहीं है तो मैं क्या कर सकता हूँ?

३८९. भगवान्‌के ऊपर निर्भर हो जाय और भगवान्‌के गले पड़ जाय फिर भगवान्‌को आना ही पड़ेगा।

३९०. ममता, स्वार्थ, आसक्ति, अहंकार, कामना—ये पापके मूल हैं।

३९१. कामना पापका उत्पादक है।

३९२. कामना, स्पृहा, अहंकार, विषमता, आसक्तिको हटा दो फिर तुम्हारे कर्म भी दिव्य हो जायेंगे।

३९३. परमात्माकी प्राप्ति होनेके बाद तो भजन स्वतः ही होता है, फिर भजन करना नहीं पड़ता।

३९४. असली सुख तो परमात्माकी प्राप्तिमें है, जो हर समय कायम बना रहता है। असली सुखकी तीन पहचान है—एक तो वह नित्य है, दूसरे उस सुखके मिलनेके बाद और सुखकी भूख मिट जाती है, तीसरे शरीरपर कितना ही आघात पड़नेपर भी उस सुखसे विचलित नहीं होता। ऐसे नित्य सुखको छोड़कर हम विषयोंमें मृगोंकी भाँति भटक रहे हैं, असली सुख तो परमात्मामें है।

३९५. किसीने कहा स्वामीजी आ गये। स्वामीजी आये हुए ही थे, किन्तु परदेके पीछे थे, प्रकट हो गये, इसी प्रकार भगवान् भी आये हुए ही हैं। परदेके पीछे हैं, श्रद्धा-प्रेम होना चाहिये, श्रद्धा-प्रेम होनेसे मिल जाते हैं।

३९६. **प्रश्न**—जप करना और स्मरण करना एक है या अलग-अलग?

उत्तर—स्मरण मनसे किया जाता है। जप मनसे भी हो सकता है, वाणीसे भी हो सकता है, श्वाससे भी हो सकता है।

३९७. महापुरुषोंका संग करना, उनकी आज्ञाका पालन करना,

उनकी सेवा करना—यही उपाय है। उनके उपदेशसे क्या होगा? सर्वत्र भगवान्‌को ही देखेगा।

३९८. एक अन्तःकरणका सुधार होनेसे इन्द्रियोंका और सबका सुधार हो जाता है। अन्तःकरणके सुधारका उपाय है निरन्तर भगवान्‌की स्मृति।

३९९. स्वार्थ और अहंकारको छोड़कर किसीको मारे तब भी उसको पाप नहीं लगेगा। स्वार्थ और अहंकार छोड़कर कर्म करनेसे वह कर्म तो भगवान् श्रीराम, श्रीकृष्णके कर्मके समान है।

४००. अधिक-से-अधिक ध्यानको ही पकावे, ध्यानकी पूर्ति हो जायगी तो भगवान्‌को बाध्य होकर मिलना होगा।

४०१. ज्यादा-से-ज्यादा निरन्तर ध्यान करे, ध्यानके लिये ही सत्संग करे, ध्यानके लिये ही जप करे, ध्यानके लिये ही सोना, खाना, पीना, बैठना—सब कुछ ध्यानके लिये ही होना चाहिये। ध्यानके अतिरिक्त कुछ भी नहीं करना चाहिये। जिससे ध्यानमें बाधा आ जाय, उसी कामको त्याग देना चाहिये।

४०२. भगवान्‌के नामका जप, वैराग्य, उपरामता, सत्संग, एकान्तवास, स्वाध्याय आदि भगवान्‌के ध्यानमें सहायक हैं।

४०३. प्रश्न—ध्यान करते समय जप छूट जाता है?

उत्तर—जप छोड़ो मत, छूट जाय तो कोई बात नहीं।

४०४. अधिक महत्त्व तो ध्यानका है, लेकिन सत्संग, जप, वैराग्य, उपरामता, स्वाध्याय उसमें सहायक हैं उनको मत छोड़ो। किन्तु धन, स्त्री, मान, प्रतिष्ठा, कुसंग उसमें बाधक हैं, उनको छोड़ दो।

४०५. स्वादकी दृष्टिको छोड़ देना चाहिये।

४०६. जो चीज ध्यानमें बाधक हो उसको छोड़ दो।

४०७. ऊँचे दर्जेका रमण यह है—मनसे ही भगवान्‌को देखे, मनसे ही भगवान्‌की सेवा करे, मनसे ही भगवान्‌की पूजा करे, मनसे ही भगवान्‌से वार्तालाप करे, हर समय मनसे भगवान्‌में रमण करे।

४०८. भगवान्‌के लिये मछली-जैसी विरह-व्याकुलता हो जानी चाहिये। जरा-सा भी भगवान्‌का चिन्तन छूट जाय तो व्याकुल हो जाना चाहिये।

४०९. गीताका ज्ञान, गोविन्दका ध्यान, गंगाका स्नान, गौका दान, गायत्रीका गान—ये पाँचों चीजें बहुत उत्तम हैं, सभी कल्याण करनेवाली हैं।

४१०. जो समय गया सो तो गया, बाकीके समयको भगवान्‌में लगा देना चाहिये। चाहे शरीर जाय, चाहे संसार जाय, भगवान्‌को एक क्षण भी नहीं भूलना चाहिये। भगवान्‌को एक क्षण भूलना अपने गलेको छूरीसे काटना है।

४११. भगवान्‌की स्मृतिके बिना जीना व्यर्थ है। और कोई इच्छा नहीं करनी चाहिये, एक भगवान्‌की स्मृतिकी इच्छा करनी चाहिये, इसीमें समय तेजीके साथ बिताना चाहिये।

४१२. परमात्माके पास हर वक्त डेरा डाल देना चाहिये। डेरा डालना क्या है? उनको हर वक्त याद रखना।

४१३. गीताके अनुसार अपना जीवन बनाना चाहिये।

४१४. परमात्मा कैसे हैं? वे आनन्दघन हैं, आनन्द-ही-आनन्द हैं, अखण्ड आनन्द हैं। वहाँ देशकालका अत्यन्त अभाव है।

४१५. ऐसे समझे कि बाहर-भीतर सर्वत्र भगवान्-ही-भगवान् हैं। जैसे समुद्रमें बर्फकी नगरी हो, वैसे ही भगवान्‌में यह संसार है।

४१६. नीचे-ऊपर, बाहर-भीतर, रात-दिन अपनी वृत्ति भगवदाकार बनानी चाहिये। चलते-फिरते, खाते-पीते सब समय भगवान्‌को निराकार रूपसे चाहे साकार रूपसे साथ रखो। वे ही भगवान् साकाररूपसे होकर हमारे साथ-साथ चल रहे हैं, यह समझकर हर वक्त भगवान्‌के नामका जप, स्वरूपका स्मरण रखे।

४१७. भीतरके शत्रु काम-क्रोधादिको वैराग्य और अविवेकरूपी शस्त्रोंसे मारकर हृदयको साफ कर डालो।

४१८. लोभ करे तो भगवान्‌के मिलनेका लोभ करना चाहिये, वही बड़ा लोभ है।

४१९. **प्रश्न**—केवल सत्संग करते रहनेसे भी भगवान्‌की प्राप्ति हो सकती है?

उत्तर—गीता १३। २४-२५का यह भाव भी निकलता है, लेकिन सत्संग सुननेके अनुसार साधन करना चाहिये। सब बातोंका सार जप-ध्यान निरन्तर करना चाहिये।

४२०. जितना सेवाका काम है, निःस्वार्थभावसे करनेसे सभी लाभदायक है, लेकिन भजन-ध्यानके समान नहीं है। कारण भरत मुनिके समान आगे जाकर कर्मोंमें आसक्ति हो जाती है। आरम्भमें आसक्ति नहीं थी। दयासे हिरनका पालन किया था। लेकिन आगे जाकर आसक्ति हो गयी।

४२१. एक होती है सेवा, एक होती है परम सेवा। शारीरिक भोजनादि कराना तो सेवा है। परम सेवा वह है जिससे परमार्थ सुधर जाय। मृत्युके समयमें किसीकी मृत्यु सुधर जाय, वैसा काम गीता, रामायण, नाम-कीर्तन सुनाना है।

४२२. सत्संग, भजन, ध्यान कभी नहीं छोड़ना चाहिये। महापुरुषोंका

संग करना चाहिये।

४२३. स्त्री, धन, शरीरका आराम और बड़ाई—इन चारोंसे बड़ा सावधान रहना चाहिये। ये जब सतावें तो भगवान्‌के आगे रोवें। हे नाथ! हे नाथ! पुकारें, मेरे जीवनमें जब-जब काम, क्रोध, लोभका आक्रमण होता तब-तब भगवान्‌के आगे रोता, उसी वक्त सुधार हो जाता।

४२४. सेवाका काम भी भजन-ध्यानसे बढ़कर हो सकता है, लेकिन हम आजतक ऐसा नहीं बना सके। इसलिये सेवाका काम चार नम्बरमें रखा है। भगवान्‌को याद करते हुए फल और आसक्तिको छोड़कर निरभिमान होकर सेवाका काम करे तो भजन, ध्यानसे भी बढ़कर सेवा हो सकती है।

४२५. भीतरसे उदारता रखें और बाहरसे कंजूस कहलावें।

४२६. भगवान्‌को छोड़कर जो जिह्वा दूसरेका गुण गाती है, वह जिह्वा जल क्यों नहीं जाती?

४२७. जो मन भगवान्‌को छोड़कर दूसरेका ध्यान करता है, वह मन विनाशको प्राप्त क्यों नहीं हो जाता?

४२८. सबसे बढ़िया बात यह है कि चलते-फिरते, उठते-बैठते कभी भगवान्‌को नहीं भूलना चाहिये। भगवान्‌की स्मृतिमें भूल हो जाय तो खूब पश्चात्ताप करे।

४२९. शरीर-मन-इन्द्रियोंको एक मिनट भी निकम्मा नहीं रहने दें, मनसे परमात्माका ध्यान, जिह्वासे नामका जप, कानोंसे सत्संग, नाम-कीर्तन सुनें; हाथोंसे, शरीरसे सेवा करें।

४३०. मन्दिरमें जाकर जो दर्शन करता है उसका कल्याण होता है। किन्तु आजकल कलियुग है, घरमें चित्र रखकर पूजन करनेसे उससे भी जल्दी काम बनता है। उससे भी बढ़कर

मनसे पूजाकी बात है, इससे मन इधर-उधर नहीं जा सकता।

४३१. श्वास द्वारा नाम-जपसे बहुत लाभ है, कारण श्वास अन्त समयतक रहता है।

४३२. किसीमें दोषोंको देखकर उस व्यक्तिसे घृणा नहीं करनी चाहिये, लेकिन दोषोंसे घृणा करनी चाहिये कि वे दोष हममें कहीं न आ जायँ, उनको मिटानेकी चेष्टा करनी चाहिये।

४३३. अन्तकालमें कामना, परवाह, ममता, अहंकार सबका त्याग कर दे। मेरापन गया तो सब गया। सब प्रभुके हैं, भूलसे मैंने अपना माना था, हे प्रभो! क्षमा करो। मेरा होता तो मेरे साथ जाता। हे प्रभो! सब आपका है। यह भाव लेकर जानेवाला फिर संसारमें नहीं आता। अन्तकालमें एक क्षणके लिये भी यह त्याग हो जाय तो कल्याण है।

४३४. प्रत्येक कर्म करते समय अपना स्वार्थ देखनेकी जगह दूसरोंका स्वार्थ देखना चाहिये।

४३५. दूसरोंका दु:ख कैसे दूर हो, अमुक आदमीको क्या कष्ट है, उसका कष्ट किस तरहसे निवारण हो सकता है, इस बातका पूरा खयाल रखना चाहिये।

४३६. दैवी सम्पदा आना कोई बड़ी बात नहीं है। आप बड़ी बात मानते हैं, इसलिये ही बड़ी बात हो रही है। मैं आपमें सद्‌गुण-सदाचार देखना चाहता हूँ, फिर ऐसा होना कौन-सी बड़ी बात है? औरोंके लिये तो कठिन मानी जा सकती है, लेकिन जब मैं आपको अच्छा देखना चाहता हूँ, तब आपत्ति ही क्या है? मैं आपको प्रसन्न करनेके लिये थोड़े ही कहता हूँ। आप विश्वास नहीं करते हैं इसलिये कष्ट पाते

हैं। आपको अच्छे-से-अच्छे आदमीको आदर्श मानकर तेजीसे काम करना चाहिये, अपनी शक्तिको याद रखना चाहिये कि मेरे पीछे भगवान्‌की तथा महापुरुषोंकी अपार शक्ति है। फिर उन्नति होनेमें क्या देर है? दूधका-सा उफान आता है। सबसे प्रेमका व्यवहार करके अपने अवगुणोंको कटिबद्ध होकर निकालनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

४३७. दोष घट जाय तब मनमें बड़ा भारी अचम्भा करना चाहिये कि मेरे द्वारा यह दोष किस तरह घट गया, मेरे द्वारा यह दोष घट ही किस तरह सकता है, मैं किस स्थानपर हूँ जितना ही अधिक अचम्भा होगा, उतना ही दोष निकट नहीं आ सकेगा।

४३८. अपने सारे जीवनकी बातोंको याद करनेसे मालूम होगा कि अपने जीवनमें ऐसा बहुत कम मौका आया होगा कि जब हमने परहितकी बात सोचनेमें कुछ समय लगाया हो, लेकिन उन पुरुषोंकी तरफ देखना चाहिये, जिनका सारा जीवन ही परहितमें बीतता है, प्रत्येक क्रिया परहितके लिये होती है, यह कितने महत्त्वकी बात है!

४३९. महात्मा पुरुष प्रायः ऐसा काम करनेको कहते ही नहीं जो काम हम नहीं कर सकते, लेकिन कभी कह दें और सामनेवाला श्रद्धालु हो तो काम चाहे जितना भी कठिन क्यों न हो, उसकी श्रद्धाके बलसे अनायास ही हो जाता है।

४४०. बड़ोंकी सेवा, जीवोंपर दया और स्वार्थत्यागपर विशेष ध्यान रखना चाहिये।

४४१. प्रमाद, आलस्य, भोग और पाप कतई त्याग करके सद्‌गुण और सदाचारके पालनपर विशेष ध्यान देना चाहिये।

४४२. भगवान्‌को हरदम साथमें समझना चाहिये, मनको बार-बार पूछे कि बोल तुझे क्या चाहिये? कुछ नहीं, कुछ नहीं, इससे प्रत्यक्ष शान्ति मिलती है।

४४३. काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या और अन्य दुर्गुणोंका कतई त्याग कर देना चाहिये।

४४४. एक क्षण भी समयको व्यर्थ चिन्तनमें न बिताकर भगवान्‌के चिन्तनमें, भजन-ध्यानमें ही बिताना चाहिये।

४४५. निन्दा-अपमानको अमृतके तुल्य तथा मान-बड़ाई-प्रतिष्ठाको विष्ठाके तुल्य समझना चाहिये। यह बात बहुत ही काम की है।

४४६. स्वाद, शौक, ऐश, आरामका त्याग करके इस प्रकृतिसे इतना ही सम्बन्ध रखना चाहिये, जितना माताकी गोदमें बैठे हुए बालकका रहता है।

४४७. सांसारिक स्वाद वास्तवमें जीती-जागती मृत्यु है। इन पतंगोंकी जो दशा है, वही उनकी है। पतंगोंके बुद्धि नहीं है। हम बुद्धि होनेपर भी उन्हींकी तरह करते हैं तो उनसे भी गये बीते हैं।

४४८. जैसे लोग अपने कुटुम्बका पेट भरनेके लिये चिन्तित रहते हैं, उसी प्रकार सब जीवोंके कल्याणके लिये चिन्तित रहें। ईश्वर-प्राप्तिसे भी बढ़कर संसारके जीवोंके कल्याणसे आनन्द मानें।

४४९. कोई भी काम हो बहुत उत्साहसे करे।

४५०. आपलोगोंको यह धारणा करनी चाहिये कि चाहे अपना कल्याण मत हो, दूसरेका कल्याण हो जाय तो अपना जीवन सफल हो गया।

४५१. आप दूसरेके उद्धारके लिये खड़े होंगे तो भगवान् आपको

स्वयं ही शक्ति देंगे, स्वयं ही योग्य बना लेंगे।

४५२. गीताका प्रचार लोगोंमें करना चाहिये।

४५३. भगवान्‌की भक्तिका प्रचार करना, लोगोंको भक्तिमार्गमें लगाना इससे बढ़कर कोई काम नहीं है।

४५४. भगवान्‌का भक्त निष्कामभावसे काम करता है, हमें भी निष्कामभावसे काम करना चाहिये।

४५५. आप यही लक्ष्य पकड़ें कि सबसे ऊँचा काम क्या है? सबसे ऊँचा काम वही है जो महात्मा पुरुष करें।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥ (गीता ३। २१)

श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करता है, अन्य पुरुष भी वैसा-वैसा ही आचरण करते हैं। वह जो कुछ प्रमाण कर देता है, समस्त मनुष्यसमुदाय उसीके अनुसार बरतने लग जाता है।

४५६. महात्मा पुरुषका लक्ष्य तो यही रहता है कि सबका कल्याण हो।

४५७. जो संसारी वस्तुका चिन्तन करता है वह भगवान्‌से दूर होता है। संसारका चिन्तन याद आवे तब पश्चात्ताप करे।

४५८. परम सेवा वही पुरुष कर सकता है जो लोगोंको कष्टके समय सहायता दे, यदि बीमारी-कष्टके समय सहायता तो नहीं करे और उपदेश देवे, तब उनका उपदेश किस तरह लगेगा?

४५९. सेवा करते समय भजन कम भी हो और उसका भजन-ध्यान करनेका उद्देश्य हो तो वह सेवा भजनसे कम नहीं है।

४६०. अपनेपर ईश्वरकी दया माननेवाले पुरुषोंको कभी निराश नहीं होना चाहिये यानी उनमें श्रद्धा-प्रेम होनेके लिये

भजन-ध्यानकी विशेष चेष्टा करनी चाहिये।

४६१. प्रभुकी कृपा तो सबपर पूर्ण है ही, अपनेपर विशेष कृपा माननेवालेको विशेष लाभ मिलता है। जो अपनेपर जितनी कृपा समझता है, उसपर उतनी ही कृपा प्रत्यक्षमें प्रतीत होने लग जाती है, विशेष कृपा समझनेसे ही विशेष कृपाका दर्शन होता है।

४६२. लोग भूतकी कल्पना कर लेते हैं, उस तरह भगवान्‌की भावना करनी चाहिये। भूत तो भूलसे माना हुआ है, भगवान् जरूर आते हैं।

४६३. मेरा तो ऐसा विश्वास है कि आपलोग मानें तो भगवान् जरूर आयेंगे। आज आप निश्चय कर लें कि भगवान् आज रातको आयेंगे तो भगवान्‌को आज रातको आपसे मिलना पड़ेगा।

४६४. जो आदमी मरणासन्न हो, उस आदमीको परमात्माकी तरफ लगा दो, इसके बराबर दुनियामें कोई भी साधन नहीं है। मरणासन्न अवस्थावालेको भगवन्नाम सुनानेवालेके उस समयकी कीमत महापुरुषोंके समयके बराबर है, इस क्रियासे भगवान् बहुत प्रसन्न होते हैं।

४६५. महापुरुष लोग सत्संगकी बात कहते हैं, गीता-प्रचारको सभी बातोंसे ऊँची समझकर भगवान् कहते हैं—

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि॥ (गीता १८। ६९)

उससे (गीता प्रचारकसे) बढ़कर मेरा प्रिय कार्य करनेवाला मनुष्योंमें कोई भी नहीं है; तथा पृथ्वीभरमें उससे बढ़कर मेरा प्रिय दूसरा कोई भविष्यमें होगा भी नहीं।

४६६. महात्माको अपने अन्दर औरोंकी अपेक्षा विशेषता मालूम नहीं देती।

४६७. जबतक अपने अन्दर विशेषताकी प्रतीति होती है, तबतक गड़बड़ है।

४६८. जबतक अपनेमें विशेषता प्रतीत हो, तबतक वह भगवान्‌का भक्त ही नहीं।

४६९. महात्मामें यही विशेषता है कि उनमें विशेषताका भान नहीं है।

४७०. भगवान् कहीं भी गये उनका प्रत्यक्ष प्रभाव मालूम हुआ। जैसे जरासन्धके यहाँ गये, उसको प्रत्यक्ष प्रभाव मालूम हुआ।

४७१. जब महापुरुष कुछ भी नहीं बोलते हों, वहाँ चुपचाप बैठे रहना चाहिये। यह बात भीष्मजीने कही, यह बहुत कामकी बात है।

४७२. महापुरुषके सभामें चले जानेपर प्रत्यक्षमें असर होता है। संसारसे चले जानेपर अन्धकार हो जाता है।

४७३. युधिष्ठिरके व्यवहारका प्रभाव दुर्योधनपर भी पड़ा।

४७४. श्रेष्ठ पुरुष और महापुरुषोंकी यह विशेषता है कि वे शत्रुके साथ भी अच्छा बर्ताव करते हैं।

४७५. अर्जुनका बहुत ही सुन्दर भाव है। उनका ऐसा भाव क्यों न हो, जिनके कारण श्रीगीताजी प्रकट हुई, जिनसे लाखों पुरुषोंका उद्धार हुआ है और हो रहा है।

४७६. महापुरुषोंकी घोषणा है कि भगवान्‌का आश्रय लेनेवालेके साधनमें कभी कमी नहीं आयेगी। उसके साधनमें नित्य नया बल आता है। भगवान् कहते हैं—जो मेरा आसरा ले लेता है, उसको कोई भी रोकनेवाला नहीं है।

४७७. जिसके हृदयमें भगवान्‌की भक्ति बस जाती है, उसके काम, क्रोध आदि मायाकी सेना निकट नहीं आती।

४७८. भगवान्‌के दासोंके दासकी शरण लेनेसे उद्धार हो जाता है। बड़े अधिकारीके दस रुपया महीनाके चपरासीमें भी कितना बल आ जाता है!

४७९. भगवान् भर्तीके लिये सदा तैयार हैं। घोर कलियुगमें भगवान्‌को बहुत जरूरत है। इस परिस्थितिमें उद्धार नहीं हुआ तो फिर कब होगा—

जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥

४८०. एक बड़ी रहस्य और तत्त्वकी बात सुनायी जाती है। अच्छे पुरुष अपनेको कभी अच्छा नहीं बताते, जैसे धनुषभंगके समय परशुरामजी आये उस समय भगवान् कितना नम्रतापूर्वक बोलते हैं—

नाथ संभुधनु भंजनिहारा। होइहि केउ एक दास तुम्हारा॥
बिप्रबंस कै असि प्रभुताई। अभय होइ जो तुम्हहि डेराई॥

परशुरामजी भगवान्‌को पहचान गये, उनका भाव बदल गया।

४८१. दो बात बतला दें, जिसे काममें ले आओ तो परमात्माकी प्राप्ति हो जाय—

१. ईश्वरको हर समय याद रखना।

२. सबके हितमें रत रहना।

४८२. सत्संग क्या है? भगवान्‌के भावोंका प्रचार करना, ऐसे पुरुषोंके संगका नाम ही तो सत्संग है।

४८३. गीता ही मेरा इष्ट है। गीतासे विरुद्ध जो कोई बात आये वह मेरे अनुकूल नहीं है।

४८४. गीता भगवान्‌का स्वरूप है, भगवान्‌का हृदय है।

४८५. भगवान्‌की शरण होनेसे मनुष्यमें निर्भयता आ जाती है, गम्भीरता, वीरता, धीरता आ जाती है, यमराजसे भी डर नहीं लगता, मार्कण्डेयजीका दृष्टान्त।

४८६. जितना भगवान्‌के निकट जायगा उतनी ही निर्भयता आयेगी।

४८७. जो आदमी अपने नाम, रूपका प्रचार चाहता है, वह नीचा है। अपने नामका जो जितना प्रचार करे, वह उतना ही नीचा है।

४८८. अच्छा, पवित्र काम करना चाहिये और निष्कामभावसे करना चाहिये। निष्कामभावसे करनेसे ही आत्माका कल्याण हो सकता है।

४८९. मनुष्यको अच्छा कर्म तो करना चाहिये, किन्तु परमात्माकी प्रीतिके लिये, परमात्माके अर्पण, परमात्माकी आज्ञानुसार करना चाहिये।

४९०. मनुष्यका शरीर आत्माके कल्याणके लिये मिला है, भोग भोगनेके लिये नहीं मिला है। यदि मनुष्य शरीर पाकर भोग भोगनेमें ही रहा तो वह घाटेमें है।

४९१. अपने तो रात-दिन एक ही लालसा, एक ही रटन रखनी चाहिये। भगवान्‌की प्राप्ति हो जाय, भगवान्‌के दर्शन हो जायँ; इसके सिवाय रुपया, धन, स्त्री, पुत्र किसीकी भी लालसा नहीं रखनी चाहिये।

४९२. हर वक्त भगवान्‌के नामकी रटन लगानी चाहिये। वाणीसे रटन हो, चाहे मनसे रटन हो, चाहे भगवान्‌के नामका जप हो, चाहे स्वरूपका ध्यान हो—अबसे लेकर मरणपर्यन्त

कायम रखना चाहिये।

४९३. हरेक आदमीको अन्यायका पैसा नहीं लेना चाहिये। न्यायका ही पैसा लेना चाहिये। अन्यायका पैसा लेनेकी अपेक्षा भीख माँगना भी अच्छा है।

४९४. सट्टा बिलकुल नहीं करना चाहिये।

४९५. ब्याजपर रुपया उधार लेकर, उधार नहीं देना चाहिये।

४९६. व्यापारके लिये भी रुपया उधार लेनेकी चेष्टा कमती करनी चाहिये।

४९७. झूठ, कपट एकदम बन्द कर देना चाहिये और नौकरसे भी झूठ, कपट नहीं कराना चाहिये, सचाईका व्यवहार करना चाहिये, पूरा नियन्त्रण करनेपर भी थोड़ी-बहुत गड़बड़ रहना सम्भव है।

४९८. आढ़त और नफा तय करके एक कौड़ी भी अधिक नहीं लेनी चाहिये।

४९९. भगवान्‌के मिलनेके सुखके समान सारे संसारका सुख बूँद बराबर भी नहीं है।

५००. सारी दुनियाका सुख भगवत्प्राप्तिके सुखकी एक बूँदके बराबर नहीं है। ऐसे भगवान् अपनेसे मिलनेके लिये तैयार हैं। हम भगवान्‌को चाहें तो भगवान् हमें चाहेंगे।

५०१. रुपयेको हम चाहते हैं, किन्तु वह हमें नहीं चाहता, जिसकी इतनी खुशामद करते हैं; इसलिये हमें भगवान्‌के लिये तत्पर हो जाना चाहिये।

५०२. रुपयोंके लिये चेष्टा करें तो वे मिलें या न मिलें, पर भगवान्‌को मिलना पड़ेगा। भगवान्‌का मिलना प्रारब्धपर नहीं है। रुपया सब जगह नहीं है, जड़ है, भगवान् सब जगह हैं।

५०३. परमात्माके सिवाय संसारकी किसी भी वस्तुका चिन्तन करे ही नहीं।

५०४. मोटर चलानेवालेकी मुख्य वृत्ति रास्तेपर रहती है, वैसे ही हमारी वृत्ति भगवान्‌पर रहे।

५०५. नटनीका ध्यान मुख्यतः पैरोंपर ही रहता है, वैसे ही प्रधानतासे भगवान्‌पर ध्यान रखें।

५०६. त्रिलोकीका दान क्षणभरके भगवान्‌के ध्यानके बराबर नहीं है।

५०७. भगवान्‌की भक्ति औषध है, अनुपान बड़ोंको प्रणाम है, बलिवैश्वदेवसे सारे विश्वकी तृप्ति हो जाती है।

५०८. रुपया पतन करनेवाला है, वही सत्कार्यमें लगाया जाय तो कल्याण करनेवाला हो जाय।

५०९. जितना बल आपके पास है उतना ही साधनमें लगाया जाय तो कल्याण कर देगा, वही प्रमादमें लगे तो नरकमें ले जायगा।

५१०. लगनके साथ भजन करनेसे बहुत जल्दी भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है।

५११. एक मिनट भी भगवान्‌का भजन-ध्यान छूटे तो बड़ी भारी हानि है।

५१२. हमें यही निश्चय करना चाहिये कि भजन-ध्यान करते हुए ही काम करेंगे।

५१३. साधनको भगवान्‌की प्राप्तिसे बढ़कर माने, साधनका काम बहुत जोरसे चलाना चाहिये, ढिलाईका समय नहीं है।

५१४. नामजपसे सबका कल्याण हो जायगा।

५१५. नामजपमें हिंसा नहीं होती।

५१६. नाम नामीसे भिन्न नहीं है, इसलिये भगवान्‌ने जपयज्ञको

अपना स्वरूप बताया है।

५१७. जो अपनेको समर्पित कर देता है भगवान्, महात्मा उसके अधीन हो जाते हैं।

५१८. भगवान्से, भगवान्के नामसे, सबसे बढ़कर सत्संग है।

५१९. महापुरुषोंकी स्पर्श की हुई हवा लगनेसे नरकके सब जीव मुक्त हो गये।

५२०. आप जल्दी-से-जल्दी परमात्मासे मिलना चाहते हों तो दु:खियोंके दु:ख दूर करें।

५२१. बड़ाई एक ऐसी चीज है जो बहुत उत्तम पुरुषको भी आगे बढ़नेसे रोक देती है।

५२२. अभीसे हर वक्त परमात्माको स्मरण रखना चाहिये, जिससे अन्त समयमें भगवान् याद आ जायँगे। साधन क्यों नहीं होता, इसकी खोज करनी चाहिये। सांसारिक सुखकी बेपरवाह करे बिना वह सुख नहीं मिलता।

५२३. जो असली समझदार आदमी होगा, वह तो पहले परमात्माकी प्राप्ति करेगा फिर और समय होगा तो सैर करेगा। जिस कामके लिये आये हैं वह काम पहले करें, अन्यथा प्रधान काम रह जायगा। सैर करने आये हो या काम करने।

५२४. असली काम तो छोड़ दिया, फालतू काममें लग गया। मुझे तो महापुरुषोंके द्वारा यही कहा हुआ है कि आजतक जो काम नहीं किया, उसे करके छोड़ो। किसीका मुलाहिजा नहीं रखकर पहले यही काम करें। प्रह्लादजी महाराजने किसीकी नहीं सुनी, भरतजी महाराजने पहले भगवान्के दर्शन किये। हमें भी पहले यही काम करना चाहिये,

प्रभुका दरबार तो बहुत पास है, उस जगह पहुँचना तो मिनटोंका काम है, देरका काम नहीं है।

५२५. सबसे बढ़कर परमात्माकी प्राप्ति है, चाहे सर्वस्व समाप्त हो जाय, परमात्माकी प्राप्ति कर लेनी चाहिये।

५२६. सबसे बढ़कर परमात्माका स्मरण है। इसकी पूर्ति करने वाला है जप, ध्यान और सत्संग। ईश्वरके स्मरणसे बहुत थोड़े कालमें परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है। यदि थोड़े दिनोंमें मृत्यु हो जाय तो भी उस चिन्तनसे अन्तकालमें कल्याण हो जायगा, यह निश्चय रखें।

५२७. भगवान्‌का चिन्तन ही अपना प्राण है। जीवनसे भी बढ़कर चिन्तनको आदर देना चाहिये। रुपया, मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा, सांसारिक आराम ही विशेष बाधक हैं। शरीरका आराम ही घातक है। जरूरी कामको भूलनेके बाद आपको पश्चात्ताप होता है, उससे भी बढ़कर चिन्तनकी भूलको समझना चाहिये।

५२८. जबतक देहमें प्राण है, तबतक कटिबद्ध होकर परमात्माकी प्राप्तिका काम कर लेना चाहिये।

५२९. समय बहुत दामी है, क्षण-क्षणमें समाप्त हो रहा है। जो कुछ करना हो, तुरन्त कर लेना चाहिये।

५३०. भगवान् बड़े दयालु हैं, कैसा भी पापी क्यों न हो, एक क्षणमें उसपर प्रसन्न होकर दर्शन दे देते हैं।

५३१. भगवान् अति कोमल हैं, सरल वाणी सुनते ही भगवान्‌ने बालिके मस्तकपर हाथ रख दिया, कितनी दयालुता है!

५३२. मनुष्य-जन्मका फल तो सबको जरूर ही पा लेना चाहिये। इसमें ढील नहीं देनी चाहिये। यह बात अपने ध्यानमें आ गयी, अब इसके लिये जोरके साथ साधन करना चाहिये।

नामका जप, स्वरूपका ध्यान, सत्-शास्त्रोंका अध्ययन, संयम, सत्संग, सेवा—ये साधन हैं।

५३३. बहुत भारी दामी बात—भगवान्‌ने बहुत सुगम रास्ता बतला दिया, तूँ मेरा निरन्तर स्मरण कर, फिर मैं सब काम आप ही कर दूँगा (गीता १२। ७)। **'नचिरात्'** यानि बिलम्ब नहीं, शब्द आया है, एक ही बात कही है।

५३४. भगवान् कहते हैं कि मेरी मायासे पार पाना बहुत कठिन है, किन्तु जो मुझको भजता है वह पार हो जाता है—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥ (गीता ७। १४)

५३५. हमलोगोंका बहुत जल्दी उद्धार हो सकता है। केवल एक बात मान लो, भगवान्‌को मत छोड़ो।

५३६. नामका जप जंजीर और स्वरूपका ध्यान नाव है।

५३७. यदि कहो कि काम-क्रोधादि बड़े-बड़े ग्राह हैं, इनसे कैसे पार पाया जाय या एक बड़ा भारी वन है, उसमें सिंह, बाघ वगैरह हैं, उसे कैसे पार किया जाय? जिसके पास बड़ी भारी सेना हो, वह पार कर सकता है, भगवान्‌का बड़ा भारी आश्वासन है, उनकी आवाजके सामने यह तुच्छ काम-क्रोधादि भाग जाते हैं।

५३८. भगवान् हमारी पीठपर मोहर लगा रहे हैं, मैं तुम्हारी सब प्रकार रक्षा करनेके लिये तैयार हूँ, तुम बिलकुल डरो मत। मैं तेजीके साथ उसे पहुँचा देता हूँ, उसे तो मेरी दयाका खयाल करना है।

५३९. यहाँ निष्काम-सकामकी कुछ भी शर्त नहीं है, केवल एक ही शर्त है कि मुझे हर समय याद रखो। बिलकुल कुछ

भी करनेकी आवश्यकता नहीं है।

५४०. भगवान्‌के नेत्रोंका अथवा किसी भी अङ्गका ध्यान करता रहे। भगवान् कहते हैं जो मुझे नहीं छोड़ता, उसको मैं नहीं छोड़ता। यही प्रतिज्ञा धर्मकी और महात्माओंकी है।

५४१. हमको बेफिक्र रहना चाहिये। प्रभु कह रहे हैं—मेरेपर निर्भर हो जाओ, मेरे बलके भरोसेपर निश्चिन्त हो जाओ, मैं तुम्हारा सब काम कर दूँगा। भगवान् कहते हैं—

सुनु सुग्रीव मारिहउँ बालिहि एकहिं बान।
ब्रह्म रुद्र सरनागत गएँ न उबरिहिं प्रान॥

५४२. भगवान् इस प्रकार सबके लिये आश्वासन दे रहे हैं। अपने मित्रपर आपत्ति पड़ती है तो सैकड़ों गुना नेह यानी स्नेह करते हैं। इन सब बातोंको सोचकर भगवान्‌पर निर्भर हो जाओ। इस प्रकार करनेके लिये भगवान् सहायता देते हैं, फिर मन लगानेके लिये चेष्टा नहीं करनी पड़ती, अपने-आप सब काम तुरन्त हो जाते हैं।

५४३. अब तो निरन्तर चिन्तनके लिये तत्पर हो जाओ।

५४४. भगवान् यहाँ प्रत्यक्ष हैं, वे मेरेपर प्रेम, आनन्द और शान्तिकी अचल वर्षा कर रहे हैं, माननेके साथ प्रत्यक्ष प्रतीति होवेगी।

५४५. भगवान्‌के प्रेमके लिये मर मिटे तो तुरन्त काम हो जाय।

५४६. स्वार्थको त्यागकर व्यवहार हो तो तुरन्त काम हो जाय।

५४७. शरीरसे ज्यादा-से-ज्यादा काम लेवे, सेवक बनकर काम करे, दूसरा भले मालिक माने, अपनेमें अभिमान नहीं आवे।

५४८. महात्माके याद करनेसे, उनके मनमें संकल्प होनेसे जिसकी याद या जिसके प्रति संकल्प होता है, वह पवित्र हो जाता

है। महात्माके वहाँ हमारी स्मृति अच्छे रूपसे हो तो फिर बात ही क्या है?

५४९. महात्माके साथ वार्तालापसे लाभ है। हम भी अपने दुःखको महात्माको सुना दें तो लाभ है।

५५०. सांसारिक परोपकारसे बढ़कर भजन है, भजनसे गीता आदिका विचार अच्छा है, उससे ध्यान श्रेष्ठ है, ध्यानसे सत्संग श्रेष्ठ है, सत्संग करनेसे भी श्रेष्ठ दूसरोंको सत्संगमें लगाना है।

५५१. जो आदमी अपने सम्पर्कमें आ जाय, उसे परमात्माका भजन करनेमें लगा दे। उसकी विध नहीं बैठे तो सत्संग करे, सत्संगकी भी विध नहीं बैठे तो ध्यान करे, ध्यान नहीं लगे तो गीताका विचार करे, यह भी नहीं बने तो भजन करे, भजन करते हुए सेवा हो तो और उत्तम है। जीविकामें बाधा नहीं पड़े, उसके बाद यह चेष्टा करे।

५५२. कम-से-कम एक पहर एकान्तमें ध्यानके लिये समय निकालना चाहिये। सत्संगके लिये ध्यान छोड़ सकते हैं, और कामके लिये ध्यान न छोड़े, यदि ध्यान नहीं लगे तो जप करें, जप एकतार करे, स्फुरणा काटनेके लिये जपसे बढ़कर उपाय नहीं है। आलस्य आने लग जाय तो बुद्धिके द्वारा शास्त्रोंका विचार करे, थोड़ी देरमें आलस्य चला जाय तो फिर जप-ध्यान करे।

५५३. मारीचके 'र' उच्चारण करनेसे भगवान्‌की स्मृति हो जाती थी, वैसे ही हमारे भी होनी चाहिये।

५५४. आपको हर वक्त भगवद्भावमें मग्न होना चाहिये, भाव ही कल्याण करनेवाला है। प्रेमभाव, निष्कामभाव, ज्ञानका

भाव, कोई भी भाव हो, भावसे तत्क्षण कल्याण हो जायगा।

५५५. संसारका जो भाव है इसको हटाकर सर्वत्र भगवत्-बुद्धि करे, आपकी संसारकी भावना है, महात्माओंकी भावना 'वासुदेवः सर्वमिति' है, वे सब जगह भगवान् वासुदेवको ही देखते हैं, उनका देखना ही ठीक है।

५५६. हमलोगोंको यह समझना चाहिये कि यह हमारा अन्तिम जन्म है तभी तो ऐसी व्यवस्था बनी है। तुम्हारी मान्यता झूठी है। तुम्हारी भावनाका कोई मूल्य नहीं है। महात्माओंकी और भगवान्‌की भावना ही सच्ची है, इसको मानकर आपलोगोंको बहुत आनन्द मिलेगा। जब प्रत्यक्ष अनुभव हो जायगा तो उसका पार ही नहीं है।

५५७. जो कुछ हो रहा है भगवान्‌की लीला है, भगवान् गुप्तरूपसे हमारे साथ लीला कर रहे हैं, उनके साथ मुक्त होकर लीला करते रहो।

५५८. निष्कामभावसे क्रिया होने लगे तो कितना आनन्द आयेगा! निष्कामभावसे करनेसे आपकी सारी क्रिया भगवान्‌की तरह लीलामात्र हो जायगी।

५५९. कहनेका अधिकार श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठका है, वे तीर्थोंको तीर्थ बनाने जाते हैं। जिनके आनन्दका पार नहीं है, ऐसे तत्त्वको जाननेवाले महापुरुष उपदेश दे सकते हैं। मैं विनय करना ही मेरा कर्तव्य समझता हूँ।

५६०. अपने लोगोंका संग है वह भी सत्संगका एक अंग है। हर एक भाईको इस काममें (सत्संगमें) लगानेकी दलाली करनी चाहिये। जो आदमी स्वार्थ त्यागकर यह करता है, उसकी महिमा बहुत है।

५६१. अन्त:करणकी पवित्रता निष्काम उपासनासे होती है। भगवान् कहते हैं—

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥ (गीता २। ४०)

इस कर्मयोगमें आरम्भका अर्थात् बीजका नाश नहीं है और उलटा फलरूप दोष भी नहीं है; बल्कि इस कर्मयोगरूप धर्मका थोड़ा-सा भी साधन जन्म-मृत्युरूप महान् भयसे रक्षा कर लेता है।

५६२. हमलोगोंमें कोई भी भाई निष्कामके तत्त्वको जानता तो आज बहुत उन्नति होती। निष्कामके बारेमें भगवान् स्वयं कहते हैं कि इसका थोड़ा भी पालन महान् भयसे तार देता है।

५६३. निष्काम इसका नाम है—

विहाय कामान्यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति॥ (गीता २। ७१)

जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओंको त्यागकर ममतारहित, अहङ्काररहित और स्पृहारहित हुआ विचरता है, वही शान्तिको प्राप्त होता है अर्थात् वह शान्तिको प्राप्त है।

५६४. ईश्वरको छोड़कर जो संसारका चिन्तन करता है वह समयको माटीमें मिलाता है।

५६५. ईश्वरके स्मरणके समान संसारमें आनन्द देनेवाली कोई चीज नहीं है, इसके सामने अमृत भी कोई चीज नहीं है, इसको छोड़कर दूसरा काम नहीं करे।

५६६. मरनेके समय हमारा जो चित्र उतर जायगा, वह बदलानेसे नहीं बदल सकता। स्थूल शरीरका चित्र तो बदला भी जा सकता है।

५६७. परमात्माकी दया हमलोगोंपर पूर्णरूपसे सदा है, ऐसी दया

होकर भी हमलोग मरें-जन्में तो हमलोगोंकी मूर्खता है।

५६८. आज हम प्रतिज्ञा कर लें कि ईश्वरको छोड़कर दूसरेका चिन्तन नहीं करेंगे, एक क्षण भी दूसरेका चिन्तन नहीं करेंगे। अभी आप नियम ले लेवें कि दूसरी चीजका चिन्तन नहीं करेंगे, फिर आज रातको भी यदि आपकी मृत्यु हो जाय, तो भी आपका कल्याण हो जायगा। हमें यह निश्चय कर लेना चाहिये कि हम इस जन्ममें भगवान्‌को प्राप्त हो जायँगे। महान् पुरुषोंकी बतायी हुई—वेद शास्त्रका सार—यह बात आपलोगोंके आगे निवेदन की है।

५६९. भगवान्‌के स्मरणको भूलना ही ईश्वरकी प्राप्तिके ठोकर लगानी है।

५७०. भगवान्‌की स्मृतिको मंजूर कर लो। ईश्वरको छोड़कर दूसरोंका चिन्तन करनेकी क्या आवश्यकता है?

५७१. जीवनकी क्या चिन्ता है, पशु आदि भी तो जीते हैं।

५७२. जहाँ कहीं रहे ईश्वरका चिन्तन करता रहे।

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते॥ (गीता ६। ३१)

जो पुरुष एकीभावमें स्थित होकर सम्पूर्ण भूतोंमें आत्मरूपसे स्थित मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेवको भजता है, वह योगी सब प्रकारसे बरतता हुआ भी मुझमें ही बरतता है।

५७३. मुझ परमात्माके ध्यानमें मस्त होकर जो निरन्तर मुझे याद रखता है वह पुरुष मेरेमें ही विचरता है।

५७४. नित्य-निरन्तर श्रद्धासे भगवान्‌को भजनेवालेकी महिमा भगवान्‌ने जगह-जगह गायी है।

५७५. आपलोग मेरी विनयको काममें लायेंगे तो इस जन्ममें बहुत जल्दी परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी। यहाँसे जाते हुए

भी भगवान्‌की प्राप्ति कर लोगे तो आनन्दका ठिकाना नहीं रहेगा।

५७६. चारों तरफ आनन्द-ही-आनन्द है, उसका प्रत्यक्ष जिसे इस जीवित अवस्थामें ही हो जाय तो फिर वह आनन्दसे विचलित नहीं होगा।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥ (गीता ६। २२)

परमात्माकी प्राप्तिरूप जिस लाभको प्राप्त होकर उससे अधिक दूसरा कोई भी लाभ नहीं मानता और परमात्मप्राप्तिरूप जिस अवस्थामें स्थित योगी बड़े भारी दुःखसे भी चलायमान नहीं होता।

५७७. ऐसे पुरुषोंके संसारके क्लेश, दुःख, शोक सब नष्ट हो जाते हैं। वे पुरुष दयामय, दयाके सागर, प्रेमकी मूर्ति हो जाते हैं।

५७८. ऊपर कहे हुए उपायके करनेसे आपलोगोंकी यह स्थिति हो जायगी।

५७९. यह प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिये कि जबतक जीवित रहेंगे, भगवान्‌को नहीं छोड़ेंगे।

५८०. परमात्माको जाननेके बाद उनका विस्मरण नहीं हो सकता।

५८१. यदि हीरा, पारस आपके हाथमें हो तो क्या उसे आप भूल सकते हैं?

५८२. जबतक भूल होती है, तबतक आप उसको पुरुषोत्तम नहीं समझते।

५८३. पुरुषोत्तमको छोड़कर नरकके ऊपर कौन हाथ डालेगा?

५८४. अमृतको छोड़कर मैली चीजको पकड़ता है, वह मैलीको मैली नहीं समझता, तभी तो उस तरफ जाता है।

५८५. जिसकी वृत्तियाँ इस संसारके सुखकी तरफ जा रही हैं,

उसको परमात्मसुखका किंचित् भी आनन्द नहीं आया। प्रयत्न करना चाहिये, आपलोगोंको ये बात समझमें आ जानी चाहिये कि परमेश्वरके समान पुरुषोत्तम कोई नहीं है।

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥
यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत॥

(गीता १५। १८-१९)

क्योंकि मैं नाशवान् जडवर्ग-क्षेत्रसे तो सर्वथा अतीत हूँ और अविनाशी जीवात्मासे भी उत्तम हूँ, इसलिये लोकमें और वेदमें भी पुरुषोत्तम नामसे प्रसिद्ध हूँ।

हे भारत! जो ज्ञानी पुरुष मुझको इस प्रकार तत्त्वसे पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकारसे निरन्तर मुझ वासुदेव परमेश्वरको ही भजता है।

५८६. ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँ परमेश्वर नहीं है (गीता ६। ३०)। शर्मकी बात है सब जगह परमात्मा होते हुए भी उसको छोड़कर अपने मनकी कल्पनाका चिन्तन करते हैं। ईश्वरने आपलोगोंको बुद्धि दी है, उसको परमात्माके चिन्तनमें खर्च करो।

५८७. परमेश्वरको बिसारना यानी छोड़ना ही अपने-आप परमात्माको छोड़ना है।

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥ (गीता ८। १४)

हे अर्जुन! जो पुरुष मुझमें अनन्यचित्त होकर सदा ही निरन्तर मुझ पुरुषोत्तमको स्मरण करता है, उस नित्य-निरन्तर मुझमें युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ, अर्थात्

उसे सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ।

इस काममें कोई परिश्रम नहीं है, पैसेका खर्च नहीं है, कोई कष्ट भी नहीं है।

५८८. जागो, चेतो, अपना पतन मत करो, ईश्वरको भूलना ही अपना पतन है।

५८९. रात-दिन परमात्माकी ज्योति आपके हृदयमें जगती रहेगी तो कोई दोष आपके पास नहीं आयेंगे।

५९०. मैं तो कहता हूँ चाहे प्राण जाय, चाहे सब कुछ चला जाय, भगवान्‌को मत छोड़ो।

५९१. ईश्वरसे बढ़कर कुछ भी नहीं है, उसका नाम पुरुषोत्तम है, उसको हम कभी नहीं बिसारें। यही मेरी विशेष विनय है। समय अमोलक है, बहुत थोड़ा है, इतनी बात आपसे विशेष कही है।

५९२. कोशिश करके अपने भाइयोंको (लोगोंको) भगवान्‌के भजन ध्यानमें लगाना चाहिये।

५९३. गीताका जो प्रचार करते हैं तथा जो लोगोंको इसमें लगाते हैं, उनसे बढ़कर संसारमें कोई भी नहीं है।

५९४. लाखों, करोड़ों मनुष्य संसारमें हैं, वे सभी लोग सत्संगमें लग जायँ, ऐसी चेष्टा करनी चाहिये।

५९५. उस परमात्माको कभी नहीं भूलना, यही मेरी प्रार्थना है।

५९६. जब हम गुप्तरूपसे भगवान्‌का भजन करेंगे, तभी भगवान् हमको स्वीकार करेंगे।

५९७. मान, बड़ाई, अपमानमें समता होनेसे मनुष्य ईश्वरके तत्त्वको समझेगा। उत्तम पुरुष जहाँ मान-बड़ाई होती है, उस जगह नहीं जाते। यह मेरी विनय है, ध्यान देकर खयाल करेंगे तो यह विनय सुनने लायक है।

५९८. अच्छे पुरुषोंके संगसे, शास्त्रोंके विचारसे यह समझमें आता है कि हमारा समय अमोलक है। हमलोग अपने समयको विचारकर बितावें तो इस जन्ममें कल्याण हो जाय, इसकी तो बात ही क्या है? हमलोगोंमें जो पापीसे भी पापी बैठा हो, उसका भी कल्याण हो जायगा, यह दावेसे कहा जा सकता है।

५९९. ईश्वर क्या है, संसार क्या है, माया क्या है, इसको समझकर अपने भावी कल्याणका विचार कर लेना चाहिये।

६००. जो ज्ञानी गीता १५। १९ के अनुसार मुझको पुरुषोत्तम समझता है, वह सब प्रकारसे मुझको ही भजता है। जबतक भगवान्‌के सिवाय दूसरेको उत्तम समझता है, तबतक भगवान्‌को पुरुषोत्तम नहीं समझता।

६०१. जड़ चीजका भजन नाशवान् पदार्थका भजन है।

६०२. सम्पूर्ण जीवोंमें श्रेष्ठ भगवान् हैं, ईश्वरसे बढ़कर संसारमें कुछ भी नहीं है, जो यह बात समझेगा, वह भगवान्‌को ही भजेगा।

६०३. **इस दुनियाके बीचमें सात वस्तु हैं सार।**
भजन ध्यान सेवा दया सत्संग दान उपकार॥

ये नहीं हो तो पाँच लेना चाहिये—गौ, गीता, गंगा, गायत्री और गोविन्दका नाम। ये नहीं होवे तो चारसे काम चला लेवें—सेवा, सत्संग, संयम और साधन।

६०४. अपना सर्वस्व जानेपर भी यदि एक दिनका जीवन बच जाय तो रख लो।

६०५. मनुष्य-जीवनका समय अमूल्य है, इसे बहुत ही विचारकर बिताना चाहिये।

६०६. इस जीवनको तौल-तौलकर बिताना चाहिये।

६०७. समयको खर्च करनेमें कंजूसकी तरह व्यवहार करो।

६०८. दस वर्ष चेष्टा करनेपर भगवान् नहीं मिले, कोई समय ऊँचा बीत जाय तो पाँच मिनटमें भगवान् मिल जायँ।

६०९. सांसारिक स्त्री, पुत्र, धनके लिये क्यों समय बिताना चाहिये? धन इकट्ठा करनेमें अपना समय गया, उससे हमें क्या लाभ हुआ?

६१०. वास्तवमें जब मरना ही है, इस शरीरकी राख होनी ही है, फिर इसके आरामके लिये अपने अमूल्य समयको इसमें क्यों लगाना?

६११. इस शरीरसे किसी भी प्रकार कष्ट सहकर ईश्वरकी भक्ति करके परमात्माकी प्राप्ति कर लेनी चाहिये, ताकि जो करोड़ों जन्म होनेवाले हैं उनसे पिण्ड छूट जाय।

६१२. लाख और करोड़ कामको छोड़कर इस कामको करना चाहिये। रात-दिन भगवान्के भजन-ध्यानमें मस्त होना चाहिये।

६१३. ईश्वरकी भक्तिको सबसे बढ़कर समझना चाहिये। काम, क्रोध, लोभादि उसके निकट नहीं आ सकते, जिसके पास भक्तिरूपी मणि बसती है। मनमें खूब चटपटी लग जानी चाहिये कि यह काम करके छोड़ना है, इसके लिये मर मिटना है।

६१४. पचास वर्षकी उम्रके ऊपरके लोगोंको तो सारा समय भगवान्के भजन-ध्यानमें लगा देना चाहिये।

६१५. यदि सत्संग नहीं मिले तो महापुरुषोंके लेखको पढ़े और विचारे।

६१६. कोई भी फालतू बात करता हो, सांसारिक बात करता हो तो उसको रोक दे।

६१७. भगवद्विषयक बातके सिवाय और बात नहीं बोले। भगवद्विषयक बातके सिवाय दूसरी बात सुने ही नहीं।

६१८. सांसारिक बात सुनना कानमें गाँवका मैल भरना है।

६१९. हाथसे दूसरेके नुकसानके लिये कोई काम न करे, सेवा तथा भगवान्‌की पूजा करे।
६२०. भगवत्-निमित्तके सिवाय कार्य करे ही नहीं।
६२१. प्रमादमें समय बिताना तामसी कर्म है।
६२२. हर वक्त भगवान्‌की स्मृति और स्वार्थका त्याग करना चाहिये।
६२३. भगवान्‌की कृपासे सब दोष अपने-आप नष्ट हो जाते हैं, फिर उसका काम बहुत जल्दी हो जाता है।
६२४. निकम्मा नहीं रहना चाहिये, काम खोजते रहना चाहिये।
६२५. बोलनेके समय बहुत विचारकर बोलना चाहिये, बिना विचारे बोलनेसे झूठ बोला जाता है।
६२६. कोई हमारा दोष कायम करे तो अपनेको निर्दोष सिद्ध करनेमें अपनी बहुत हानि है। दोष हो तो हटा देवें, नहीं हो तो मौन रहें।
६२७. स्त्रियोंमें दो दोष हैं—कामके लिये रोना और स्वार्थ (ओछापन)-लोभका दोष।
६२८. दो बातें धारण करनी चाहिये—दूसरेका गुण कहना और स्वार्थ-त्यागका बर्ताव करना।
६२९. सबको भगवान्‌का स्वरूप मानकर उनकी सेवा करना भगवान्‌की ही सेवा है।
६३०. किसी भी प्रकारकी कामना हो, उसे जड़से उखाड़कर गिरा दो।
६३१. किसीसे काम लेना हो उसके पास जाना चाहिये, काम बहुत सुगमतासे हो जायगा।
६३२. अपने निकट सम्बन्धीका दोष नहीं कहना चाहिये, उससे वह नाराज हो जायगा, उसका सुधार नहीं होगा।
६३३. अपना जीवन ज्यादा खर्चीला नहीं बनाना चाहिये, स्वावलम्बी बनना चाहिये, बहुत कम खर्च करना चाहिये। खाने-

पीनेकी थोड़ी चीजोंसे काम चलाओ।

६३४. भजन-ध्यानमें मुख्य वृत्ति तथा काममें गौण वृत्ति रहनी चाहिये।

६३५. ऋषि-मुनियोंका जीवन खर्चीला नहीं था।

६३६. अपने ऊपर भगवान्‌की अनन्य दया और प्रेम समझ-समझकर मुग्ध होवे।

६३७. एकान्तमें बैठे तब मनको समझा दे कि तू इस समय फालतू चिन्तन करेगा तो तुझे क्या लाभ है? मनको समझाकर उससे फालतू चिन्तन छुड़ा दे।

६३८. एकान्तके भजन-ध्यानको तत्परताके साथ खूब दामी बनाना चाहिये।

६३९. खाने-पीने-पहननेकी चीजोंका सेवन आसक्तिसे नहीं करना चाहिये।

६४०. स्वादकी तरफ ध्यान देना डुबानेवाला है।

६४१. अर्थदृष्टिके त्यागसे वैराग्य और उपरामता पैदा होती है, इसलिये अर्थकी तरफ दृष्टि नहीं देनी चाहिये।

६४२. पात्र बननेकी आवश्यकता है, पात्र होनेपर भगवान् आप ही दर्शन देंगे। अपने पात्र बनो।

६४३. सत्संगकी बात-बिना रुचिवालेको न कहे।

६४४. जहाँ बहुत व्याख्यानदाता हों, उस जगह नहीं जाना चाहिये।

६४५. ऊँचे आसन, ऊँचे पदसे दूर रहना चाहिये।

६४६. गुरु-शिष्यके व्यवहारमें कहीं गुरु न बने।

६४७. मृतकके क्रियाकर्ममें जहाँ जाना हो वहाँ जाये पर बुलाये नहीं।

६४८. दहेज देवें पर लेवें नहीं।

६४९. पंचायतीसे दूर रहें।

६५०. सगाईके काममें बीचमें न पड़ें।

६५१. प्रात:काल उठनेके पूर्व यदि सूर्योदय हो जाय तो उपवास, जप करें।

६५२. सूर्योदय होनेके पहले सन्ध्या-गायत्री करे, देर हो जाय तो उपवास करे।

६५३. स्नान-सन्ध्या-नित्यकर्म किये बिना जलके सिवाय कोई भी चीज मुखमें न लें।

६५४. बलिवैश्वदेव करके ही भोजन करें।

६५५. रास्ता चलते हुए कोई भी चीज तुलसी छोड़कर न खायें।

६५६. भोजनके पूर्व और पीछे दोनों समय आचमन करें।

६५७. एकान्तमें दो आदमी बात करते हों तो बिना सम्मतिके पास न जायँ।

६५८. जीवहिंसाको बचाते हुए चलें।

६५९. घी, शहद, तेल, जल, दूध आदि तरल पदार्थ छानकर पीवें।

६६०. भगवान्‌के विधानपर बहुत संतुष्ट रहें।

६६१. हिंसा होनेवाली चीज व्यवहारमें न लायी जाय।

६६२. हिंसा वाला शहद काममें न लेवें।

६६३. आचरणोंके सुधारकी जड़ स्वार्थत्याग है।

६६४. चोरी करने, झूठ बोलनेसे रुपया मिल सकता है, पर हमें यह नियम लेना चाहिये कि चाहे भीख माँगकर खा लेंगे, पर अन्याय नहीं करेंगे।

६६५. गीता भगवान्‌के साक्षात् वचन हैं। रामायण महापुरुषोंके वचन हैं, इनको पढ़नेसे नित्य नये-नये भाव उत्पन्न होते हैं।

६६६. जितनी देर नित्यकर्म करे, मनको उसी काममें लगाना चाहिये, बराबर उसकी सँभाल रखनी चाहिये।

६६७. वैराग्य हो, आलस्य कम हो, मनमें चेतना हो, उस समय लाख काम छोड़कर ध्यान करना चाहिये।

६६८. जिस समय वैराग्य न हो, आलस्य हो, उस समय युक्तियोंसे काम लेना चाहिये।

६६९. विक्षेपको मारनेकी युक्ति परमात्माका नाम है, इसके समान संसारमें कोई बल नहीं है।

६७०. भगवान्‌में मेरा प्रेम हो—यह माँग हर वक्त जारी रहे।

६७१. उठो, जागो, चेतो, सावधान होकर उस परमात्माके प्रेममें तन्मय हो जाओ, अपने तन-मनकी सुधि ही न रहे।

६७२. वक्ता स्वार्थरहित होना चाहिये, मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा तथा स्वर्गको चाहनेवाला भी स्वार्थी समझा जाता है।

६७३. आप पाँच आदमी एक जगह एकान्तमें बैठे हों, वहाँ एक आदमीके बहुत स्फुरणा हो तो उसके परमाणु भी अन्य लोगोंमें आ जायँगे। बुरी जगहके परमाणु भी आ जाते हैं।

६७४. जिसके बहुत ज्यादा आलस्य आवे तथा जिसके बहुत ज्यादा विक्षेप हो, उस आदमीको पासमें नहीं रखना चाहिये।

६७५. कोई भी काम करे, परमार्थको विचारकर करे, स्वार्थ न रहे।

६७६. वही मनुष्य बुद्धिमान् और समझदार है, जो एक-एक क्षणका समय बहुत समझकर बिताता है।

६७७. भगवान् भक्तोंको और प्रेम करनेवालोंको दर्शन देनेके लिये हर समय तैयार हैं।

६७८. मनुष्यको दो जगह रोना चाहिये—

१. दूसरेके दु:खको देखकर रोना मुक्तिदायक है।

२. भगवान्‌के निमित्त रोना मुक्तिदायक है।

६७९. पाँच जगह हँसे—

१. लोगोंकी प्रसन्नतामें हँसे।

२. धर्मके लिये प्राण हँसते-हँसते देवे।

३. सबके उद्धारका काम हँसता-हँसता करे।

४. लोगोंका दुःख दूर हो इस कामको हँसता-हँसता करे।

५. भगवान्‌के प्रत्येक विधानमें सदा प्रसन्न रहे, हँसता रहे।

६८०. गीता-प्रचार करनेवाले लोगोंसे बढ़कर मेरा प्यारा कोई नहीं है।

६८१. गीताकी पुस्तकको खूब आदर देना चाहिये।

६८२. गीताको भगवान्‌से भी बढ़कर बतावें तो भगवान् नाराज नहीं होंगे।

६८३. गीताकी महिमा सारे पुराणोंमें आयी है। जिस पुराणमें गीताकी महिमा न हो, उस पुराणको मत मानो।

६८४. गीतामें स्नान करनेवाला संसारका उद्धार कर सकता है, गीता गायत्रीसे भी बढ़कर है।

६८५. गीता सुनते हुए मरनेवाला, पाठ करनेवाला, अर्थसहित पाठ करनेवाला, अर्थ समझनेवाला, धारण करनेवाला—ये उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं।

६८६. मुझे सबसे बढ़कर प्रिय कौन लगे? जो मेरे सिद्धान्तोंका प्रचार करे, वह मुझे सबसे बढ़कर प्यारा लगता है, वह ही मेरा सेवक और मालिक है। खुद करे और लोगोंसे करावे।

६८७. क्रिया तो अज्ञानियोंकी तरह करे, भाव अपना दे दे। सिद्ध पुरुषोंकी तरह कर्म करे। अज्ञानी आसक्तिपूर्वक कर्म करते हैं, हमें आसक्ति छोड़कर कर्म करना चाहिये।

६८८. महापुरुषोंकी वाणी प्रामाणिक मानी जाती है।

६८९. गीता निष्पक्ष ग्रन्थ है। वाममार्गकी भी गीता निन्दा नहीं करती।

६९०. सारे शास्त्र दब जायँगे तो गीता जीती-जागती रह जायगी।

६९१. गीताके प्रचारके लिये तो हमें सेनाकी तरह तैयार हो जाना चाहिये।

६९२. मैं गीता-गीता कहता रहता हूँ, कोई कहे कि पागल हो गये क्या? इस पागलपनमें भी मजा है।

६९३. भगवान्के सिवाय सबको भूलना है।

शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत्॥

(गीता ६। २५)

क्रम-क्रमसे अभ्यास करता हुआ उपरतिको प्राप्त हो तथा धैर्ययुक्त बुद्धिके द्वारा मनको परमात्मामें स्थित करके परमात्माके सिवा और कुछ भी चिन्तन न करे।

६९४. गीताके बहुत प्रभावकी बात आपको नहीं कही, क्योंकि मुझे आपसे काम लेना है।

६९५. गीताका पाठ सुननेवाला भी मुक्त हो जाता है।

६९६. कैकेयी-जैसी माताके साथ श्रद्धाका व्यवहार करना मामूली बात नहीं है।

६९७. गली-गलीमें गीता-ही-गीता हो जाय, ऐसा कोई भी घर बाकी नहीं रहने दे जिस घरमें गीता न हो। जिस घरमें गीता नहीं, वह घर श्मशानके समान है।

६९८. जिस घरमें गीताका पाठ नहीं हो, वह यमपुरीके समान है।

६९९. क्रिया, कण्ठ, वाणी तथा हृदयमें गीता धारण करनी चाहिये।

७००. गीता कण्ठस्थ कर लें, हृदयमें धारण कर लें, गीताके सिद्धान्त और उसके भाव एक हैं।

७०१. एक गीताके द्वारा हजारों-लाखों-करोड़ोंका कल्याण हो सकता है, इसकी बड़ी विलक्षणता है।

७०२. गीतारूपी वृक्षको सींचो, यह संसारको काटता है।

७०३. आपलोग हमारे गीता-प्रचारके काममें खूब भाग लें।

७०४. सबके हृदय, कंठमें गीता बसा देवें।

७०५. मेरा जीवन, प्राण-सब कुछ गीता है। एक तरफ सब धन,

एक तरफ गीता होनेपर भी सांसारिक धनसे गीताकी तुलना नहीं की जा सकती।

७०६. गीताकी स्तुति इस प्रकार गावें—

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गीता पोषण करती है इसलिये माता है। गीता रक्षा करती है इसलिये पिता है। भाई तो धोखा दे सकता है गीता धोखा नहीं देती। मौकेपर सखा भी साथ छोड़ देते हैं, पर गीता नहीं छोड़ती। यही असली विद्या है। जिसके पास गीता-धन है, उसके पास सब कुछ है।

७०७. गीता भगवान्‌का हृदय, वाणी, श्वास, आदेश सब कुछ है।

७०८. हमारा सर्वस्व गीता है। सारा धन भले ही चला जाय, गीता हमारे पास रह जाय।

७०९. मनसे रुपयोंको माटी समझना चाहिये।

७१०. रुपया इकट्ठा कर रखा है, वह माटी इकट्ठी कर रखी है।

७११. बाहरमें रुपया, आदमी दोनोंको आदर देना चाहिये। हृदयमें इनको महत्त्व नहीं देना चाहिये।

७१२. भगवान्‌की शरणसे प्रसन्नता मिलेगी।

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि। (गीता १८। ५८)

मेरेमें चित्त लगानेसे सब दुःखोंसे पार हो जायेगा। असली प्रसादकी प्राप्तिके लिये आधा श्लोक पर्याप्त है। यह आप मान लें कि भगवान् स्वयं आपको ही कह रहे हैं—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८। ६६)

सम्पूर्ण धर्मोंको अर्थात् सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मोंको मुझमें

त्यागकर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार परमेश्वरकी ही शरणमें आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर।

७१३. गीताकी असली शक्ति भीतर छिपी हुई है। गीता तत्त्वांक बुदबुदा है, पहले तो झाग खाये, झाग खानेसे तो मक्खनका स्वाद आयेगा। असली बात असली श्रद्धालु-से कहनी चाहिये जो सुनते ही असली (महापुरुष) बन जाय।

७१४. प्रेमसे या किसी भी प्रकारसे भगवान्‌को याद रखे।

७१५. मेरी बात माने उसका कल्याण हो जायगा। इस बातको मैं लाख आदमियोंमें कह सकता हूँ, अखबारमें छपवा सकता हूँ। मेरी एक ही बात है कि गीताका खूब प्रचार करो। मेरी बात माननेमें लाभ है।

७१६. भगवान्‌के साथ रहनेमें लाभ है।

७१७. मैं तो उस आदमीकी प्रशंसा करूँगा जो मेरी बात माने। मेरे लिये तो वही सेवक, मालिक, प्यारा सब कुछ है।

७१८. जिस प्रकार धन इकट्ठा करनेके लिये लोग तत्पर हो रहे हैं, उसी प्रकार वास्तविक धनको इकट्ठा करनेके लिये इससे विशेष तत्पर होना चाहिये।

७१९. मन, तनसे उस वास्तविक धनको इकट्ठा करनेके लिये तत्पर होना चाहिये।

७२०. संतोंकी चेतावनीकी तरफ खयाल करना चाहिये, जिस कामको करनेके लिये आये हैं, वह कर लेना चाहिये, अन्यथा सब काम धरा ही रह जायगा।

७२१. अपने स्वार्थकी तरफ खयाल करके देखो तो भजनके समान स्वार्थ किसी भी चीजमें नहीं है।

७२२. सबसे उत्तम यह बात है—चलते, उठते, बैठते, खाते-पीते

भगवान्‌को याद रखें। नामका जप, स्वरूपका ध्यान और आज्ञापालन करें।

७२३. सबसे बढ़कर यह बात है—

सब जीवोंके हितमें रत रहना।

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥ (गीता ६।३२)

हे अर्जुन! जो योगी अपनी भाँति सम्पूर्ण भूतोंमें सम देखता है और सुख अथवा दुःखको भी सबमें सम देखता है, वह योगी परम श्रेष्ठ माना गया है।

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥

७२४. बलिवैश्वदेव, सन्ध्या, चरण-स्पर्श, गायत्री-जप—इनके समान चारों वेदोंमें कोई भी नहीं है। नित्यप्रति गायत्री-मन्त्र १००० जपे तो उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, पवित्र होकर गायत्री जपे। बाकी और समय नाम-जप करे। समयसे, नियमसे और प्रेमसे (नेम, टेम और प्रेमसे) सन्ध्या करे।

७२५. जल्दी-से-जल्दी उस परमेश्वरसे मिल जायँ, ऐसी चेष्टा होनी चाहिये। उसके मिलनेके बाद उसका बिछोह नहीं होगा।

७२६. भगवान्‌के रहस्यको जाननेवालेको जर्रे-जर्रेमें, रोम-रोममें सब जगह प्रभुका दर्शन होता रहता है।

७२७. महापुरुष जो धर्म बता देते हैं, वही धर्म है। लाख आदमियोंका बतलाया हुआ धर्म नहीं है।

७२८. **अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।**
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥ (गीता ८।१४)

हे अर्जुन! जो पुरुष मुझमें अनन्यचित्त होकर सदा ही निरन्तर मुझ पुरुषोत्तमको स्मरण करता है, उस नित्य-

निरन्तर मुझमें युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ, अर्थात् उसे सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ। ऐसा मार्ग रहते हुए भी हम जन्में और मरें तो हमारेसे बढ़कर कौन मूर्ख है?

७२९. दूसरेके सुखके लिये अपने सुखको छोड़ देना चाहिये।

७३०. दूसरेका परमार्थ सुधारनेके लिये मदद देनी चाहिये, अपने लिये कम भी हो तो दूसरोंके लिये विशेष पुरुषार्थकी कोशिश करनी चाहिये।

७३१. कोई अपना अपकार करे, उसके साथ भी उपकार करनेकी कोशिश करनी चाहिये।

७३२. अपने साथ कोई द्वेष करे और कड़ा वचन बोले, उसके साथ भी प्रेमके व्यवहारकी कोशिश करनी चाहिये।

७३३. दूसरोंमें प्रत्यक्ष दोष हो तो भी उनके दोषका वर्णन नहीं करना तथा निन्दा भी नहीं करनी चाहिये। घरमें किसीमें दोष हो तो भी दूसरोंके आगे दोष नहीं कहना चाहिये। जिसमें दोष हो वह यदि कहनेके लिये बहुत कहे तो उसको कहनेमें दोष नहीं है।

७३४. उत्तम काम करके भी गिनाना नहीं चाहिये तथा प्रशंसा भी नहीं करनी चाहिये।

७३५. हर समय परमात्माके नामका जप, स्वरूपका ध्यान रखते हुए ही संसारका काम करनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

७३६. प्रमादी, नीच, विषयासक्त पुरुषोंका संग नहीं करना चाहिये, संग प्राप्त होनेपर भी उनसे प्लेगकी बीमारीकी तरह डरते रहना चाहिये।

७३७. दूसरोंके धनके ऊपर कभी मन नहीं ललचाना चाहिये।

७३८. संसारके भोगोंके संग्रहको पाप समझकर भगवान्‌के लिये भी इकट्ठा नहीं करना चाहिये।

७३९. भारी आपत्ति आनेपर भी झूठ नहीं बोलना चाहिये।

७४०. भगवान्‌को याद रखते हुए, भगवान्‌की प्रीतिके लिये भगवान्‌की आज्ञा मानकर दुःखी जीवोंकी तन, मन, धनसे सेवा करे। कोई आगसे, बाढ़से चाहे किसी प्रकार भी दुःखी हो, उसकी सेवा करे।

७४१. भविष्यका संकल्प बाधक है, पाँच दिन पीछेका भी संकल्प नहीं बनाना चाहिये। जब जानेका अन्न-जल होगा उस दिन जाना हो सकता है। पहलेसे कुछ भी विचार नहीं करना चाहिये।

७४२. संकल्प करके वह काम पूरा होनेके पूर्व बीचमें मर जाय तो किसी-न-किसी रूपमें उस कार्यको पूरा करनेके लिये आना पड़ेगा।

७४३. कभी भजन, कभी ध्यान, कभी उपासना, कभी शास्त्रोंका अभ्यास इस तरह रात-दिन चक्र चलाना चाहिये।

७४४. मेरे द्वारा भजन रात-दिन होता है, किसी समय छूट जाता है तो व्याकुल हो जाता हूँ।

७४५. सम्पूर्ण जीवन मद्गतप्राण हो जाना चाहिये, तब प्राप्ति होगी।

७४६. आगे क्या होगा उसका संकल्प करना ही नहीं चाहिये। परमात्माके भजन-ध्यानके लिये किसीको कुछ आवश्यकता नहीं है।

७४७. हठपूर्वक त्यागसे विचारपूर्वक त्याग और विचारपूर्वक त्यागसे वैराग्यपूर्वक त्याग ऊँचा है।

७४८. कामनाके त्यागसे आसक्तिका त्याग ऊँचा है, आसक्तिसे अहंकारका त्याग ऊँचा है।

७४९. **प्रश्न**—तत्त्व जाननेके बाद साधक भगवान्‌में लीन हो जाता है या वैकुण्ठमें भी जा सकता है?

उत्तर—साधकको इच्छा है, लीन भी हो सकता है तथा वैकुण्ठमें भी जा सकता है, उनकी इच्छा हो तो वे कारकपुरुषकी तरह भी आ सकते हैं।

७५०. मान-बड़ाईका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये।

७५१. किसी भाईके द्वारा शारीरिक या आर्थिक सेवा नहीं करानी चाहिये।

७५२. कोई भी मनुष्य अपने मतका विरोध करे तो शान्तिपूर्वक सहन करना चाहिये।

७५३. मेरा मत ठीक है-ऐसा शब्द नहीं कहना चाहिये।

७५४. स्त्रियोंसे सर्वथा अलग रहना चाहिये।

७५५. श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके साथ आसाम जानेवालोंके लिये नियम—

१. श्रीगीताजीके एक अध्यायका पाठ नित्य करना चाहिये।

२. एक घंटा ध्यान करना चाहिये।

३. षोडशनामकी चौदह माला नित्य फेरनी चाहिये।

४. दोनों समय सन्ध्या और गायत्रीकी एक-एक माला फेरनी चाहिये।

५. हाथका बुना हुआ कपड़ा पहनना चाहिये।

६. मिठाई नहीं खानी चाहिये।

७. तमाखू नहीं पीनी चाहिये।

८. ब्रह्मचर्यसे रहे।

९. सत्य बोले।

१०. शौकीनी-विलासिताका त्याग करे।

११. नौकरको साथ नहीं रखे, समुदायमें भले ही रहे।

१२. अपना काम अपने हाथसे करे।

१३. अपना-अपना खर्चा आप ही दे।

१४. क्रोध नहीं करे।

१५. नियत समयपर सोना और उठना चाहिये।

७५६. ईश्वरका स्मरण सदा हो और ईश्वरको सर्वत्र सब समय देखता रहे।

७५७. ईमानदार और परिश्रमशील जीवन व्यतीत करना चाहिये।

७५८. अपनी आवश्यकताओंको दूसरोंकी देखादेखी बिलकुल नहीं बढ़ाना चाहिये।

७५९. किसी भी अच्छे काममें लजाना नहीं चाहिये और बुद्धिमत्ता तथा परिश्रमसे काम करके अपनी आवश्यकता उत्पन्न कर देनी चाहिये।

७६०. चरित्र ही मनुष्यका जीवन है, धन है, इज्जत है, धर्म है और परमात्माकी प्राप्तिका परम साधन है, अतएव चरित्रको अत्यन्त उच्च और पवित्र बनाये रखनेकी प्राणपर्यन्त चेष्टा रखनी चाहिये।

७६१. प्रलोभनोंमें नहीं फँसना चाहिये।

७६२. स्वाध्याय, सद्विचारोंका संग्रह तथा नित्य भगवदोपासनामें कभी प्रमाद मत करना, जीवनको पवित्र-पुष्ट रखनेके लिये इस खुराककी बड़ी ही आवश्यकता है।

७६३. सफलतामें गर्व नहीं करना चाहिये।

७६४. अपने सहयोगी और पड़ोसीसे अवश्य प्रेम रखना चाहिये।

७६५. खर्च कम करना और कुछ बचाकर अवश्य रखनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

७६६. स्त्रियोंके संगसे खूब सावधानीसे बचे रहना चाहिये।

७६७. स्वाध्यायका ध्यान रखना चाहिये, खानपानमें संयम रखना, नित्य कुछ व्यायाम करना चाहिये।

७६८. डरकर झूठ नहीं बोलना चाहिये तथा स्वार्थके लिये भी झूठ नहीं बोलना चाहिये।

७६९. मालिकको कामसे खुश रखना चाहिये, पर उसके पापमें शामिल नहीं होना चाहिये।

७७०. अपनेको सदा विश्वासपात्र, सुयोग्य, सदाचारी और आज्ञाकारी बनाना चाहिये।

७७१. धारण करे, सुने उसके अनुरूप क्रिया करे ऐसा करनेसे गीतामय जीवन हो जायगा। गीता पढ़े, कंठस्थ करे, हृदयमें धारण करे।

७७२. गीता-तत्त्वांक (गीतातत्त्वविवेचनी) रोज देखनेवाला तथा उसके अनुसार चेष्टा करनेवाला भगवान्‌का प्रिय काम करता है तथा हमारा भी प्रिय काम करता है।

७७३. धनके छः भाग करने चाहिये—
देव, कुटुम्ब-कार्य, भावी खर्च, घर-खर्च (मुख्य), राज्य, जनता।

७७४. आज यह स्फुरणा हुई कि गीता-प्रचारमें रुपया लगे, वह धन काममें लगा दिया। इस समय अपने जरियेसे जो काम करना चाहे उसे मैं यही कहता हूँ कि गीता-प्रचारमें रुपया लगाना ठीक है।

७७५. जो मनुष्य संसारमें सबके साथ समताका व्यवहार करता है उसका व्यवहार भगवान्‌से कम नहीं है। भगवान् कहते हैं—

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥

(गीता ९। २९)

मैं सब भूतोंमें समभावसे व्यापक हूँ न कोई मेरा अप्रिय है और न प्रिय है; परन्तु जो भक्त मुझको प्रेमसे

भजते हैं, वे मुझमें हैं और मैं भी उनमें प्रत्यक्ष प्रकट हूँ।

७७६. हमलोग सबके साथ समताका व्यवहार करने लग जायँगे तो भगवान् हमको वह अधिकार दे सकते हैं। ऐसा करनेवाला त्रिलोकीका मालिक हो जायगा।

७७७. नरकके जीव भी बुरे व्यवहार करनेवालेसे डरते हैं।

७७८. हमलोगोंको नरकमें ले जानेवाला व्यवहार तो बंद करना चाहिये।

७७९. धोखाबाजी, झूठ बोलना तथा चोरी नहीं करनी चाहिये, दूसरेका हक हमारे लिये घृणित है।

७८०. आपलोग कह देते हैं कि मुझसे ध्यान नहीं होता। बतलाइये ध्यानके लिये कौन चेष्टा कर रहा है? कुल दो घंटा ध्यानके लिये नियत किया गया है, सन्ध्या भी ठीक तरहसे नहीं होती। सन्ध्या तो करते हैं, पर वृत्तियाँ लोभमय बनी हुई हैं। वृत्ति भगवन्मय बना दो तो कल्याण हो जाय।

७८१. ऐसे मनुष्य-शरीरको पाकर हम अपने कर्तव्यको भूल गये।

७८२. जबतक आपको संसारके विषयोंमें सुख प्रतीत होता है, तबतक समझना चाहिये कि भगवान्का प्रेम आपके हृदयमें उत्पन्न ही नहीं हुआ है।

७८३. मनुष्य-शरीर पाकर अपना काम जल्दी बना लें, आपसे यही प्रार्थना है।

७८४. इस समय भगवान्के नामका अवतार है।

७८५. ईश्वरकी आपलोगोंपर बड़ी भारी कृपा है।

७८६. जो एक क्षणका भी समय बिना विचारे बिता देता है, उसके बराबर कोई मूर्ख नहीं है। अपना समय भगवत्-चिन्तनमें ही बिताना चाहिये।

७८७. जहाँ भगवान्के भक्तजन हों, वह जगह पवित्र हो जाती है, वहाँकी वायु पवित्र हो जाती है।

७८८. ये बातें पालन करनेके उद्देश्यसे सुननी चाहिये। आपलोगोंको यह विश्वास करना चाहिये कि इनके पालन करनेसे परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है। महापुरुषोंके वचनोंको ही मैं आपके सामने निवेदन करता हूँ—

१. श्रीगीताजीके एक अध्यायका पाठ नित्य करना चाहिये।
२. बलिवैश्वदेव नित्य करना चाहिये, यदि क्रियारूपसे करनेमें कोई कठिनाई हो तो मानसिक कर सकते हैं, किन्तु क्रियारूपसे करना विशेष है।
३. समताका व्यवहार करनेवाला सबसे उत्तम है।
४. झूठसे नरककी प्राप्ति होती है।
५. समतासे मुक्तिकी प्राप्ति होती है।
६. स्वार्थत्याग करनेवालेमें दूसरेकी मुक्ति करनेकी भी योग्यता हो जाती है।

७८९. अज्ञानसे उत्पन्न होनेवाले दोष—
संशय, मोह (भ्रम), अश्रद्धा, नास्तिकता, कपट (मानसिक), अज्ञता (बुद्धिकी मन्दता), आलस्य, अपवित्रता, उन्मत्तता, निर्लज्जता, कृतघ्नता, विद्याकी कमी, मूर्खता (बर्ताव), छल (बाहरी), अपने अपराधको दूसरेके सिर मढ़ना, अति निद्रा।

७९०. अहंकारसे उत्पन्न होनेवाले दोष—
ममता, दर्प (घमण्ड), दम्भ, प्रमाद, हठ, मान, बड़ाई, उद्दण्डता, डकैती, धूर्तता।

७९१. भयसे उत्पन्न होनेवाले दोष—
चिन्ता (शोक) धीरज खो देना, उद्वेग, दुःख, पश्चात्ताप।

७९२. रागसे उत्पन्न वाले दोष—
कामना, वासना, लोभ, तृष्णा, स्वाद, शौकीनी, आराम (ऐश), परिग्रह, लोलुपता, अशुश्रूष्य (सेवाका अभाव),

अश्लीलता, परस्त्रीगमन, हँसी-मजाक, चोरी, अभक्ष्य भोजन (मदिरा-मांस, मादक पदार्थ), संकीर्णता (ओछापन), झूठ, चपलता (शरीर), विक्षेप (मनकी अशान्ति), वाणीकी वाचालता, मन-इन्द्रियके पराधीन होना, अकर्मण्यता (साधनसे जी चुराना), आलसी स्वभाव, कंजूसी।

७९३. द्वेषसे उत्पन्न होनेवाले दोष—

वैर, क्रोध, ईर्ष्या, क्रूरता, निन्दा, चुगली, परदोषदर्शन, निर्दयता, कटुभाषण, विश्वासघात, घृणा, दूसरेकी आजीविकाका नाश करना, हिंसा, वक्रता, रूठना, असहनशक्ति, तिरस्कार, विषमता (भेदभाव), डकैती, उद्वेग।

७९४. सारे दोषोंका मुख्य कारण अज्ञान है। राग, द्वेष और अज्ञानके कारण प्रायः अधिकतर दोष इन तीनोंमेंसे प्रत्येकमें घट सकते हैं।

७९५. महापुरुषद्वारा जो क्रिया होती है, उसमें बहुत विलक्षण बात है। हमलोग अपनी बुद्धिसे उसका कुछ भी अनुमान नहीं कर सकते।

७९६. जिह्वासे भगवान्‌के नामका जप करनेसे भूल बहुत कम होती है।

७९७. मनसे भजन करना बहुत दामी है।

७९८. एक मिनट भी व्यर्थ नहीं जाने दें।

७९९. स्वार्थका त्याग, लोभका त्याग बहुत लाभ पहुँचानेवाला है। प्रत्येक क्रिया इस कसौटीपर कसता रहे।

८००. सत्य भाषण, सत्य व्यवहार पर खूब जोर रखें।

८०१. आपसमें खूब प्रेम बढ़ावें।

८०२. व्यवहारमें खूब उदारता रखें।

८०३. विनय, प्रेम यह सब साधु पुरुषोंका लक्षण है।

८०४. अपनेमें दोष आये, वह लोगोंको बतला-बतलाकर निकाले। किंचिन्मात्र भी दोष हो, उसको भी बहुत अधिक माने।

८०५. अच्छे-से-अच्छा आचरण, व्यवहार अपनेमें धारण करो। ऐसी कोई भी बात नहीं है, जो मनुष्य धारण नहीं कर सके। इसलिये जो ऊँची-से-ऊँची बात लगे, उसको तुरन्त धारण कर लो।

८०६. आपसमें स्पर्धा रखते हुए दौड़ लगाओ, उत्साहके साथ चलनेसे रास्ता बहुत ही जल्दी कट जायगा।

८०७. यह बात मैं आपलोगोंमें देखना चाहता हूँ, जब मैं ऐसा देखना चाहता हूँ, तब आपके क्या कठिनता है? अड़चन पड़े मेरेसे पूछ लो।

८०८. आपलोग बहुत ऊँचे दर्जेके पुरुषको आदर्श मानकर बहुत प्रेम और विनयका व्यवहार करें।

८०९. कोई दूसरा अपना दोष बतावे तो बहुत प्रसन्न होना चाहिये कि आपने यह बताकर मुझे चेत करा दिया, आपका यह उपकार मैं नहीं भूलूँगा।

८१०. यह बात आपसे होने लायक नहीं होती तो मैं कहता ही नहीं। मेरे मनमें कभी यह बात नहीं आती कि मनुष्य कोई भी काम नहीं कर सकता। दुनियामें ऐसी कौन-सी बात है जो मनुष्य कर सकता है, उसे हम नहीं कर सकते?

८११. मनके विपरीत कार्य होनेमें खूब प्रसन्नता हो, ऐसा अभ्यास डालो।

८१२. मनके अनुकूलमें जितनी संतुष्टि होती है, प्रतिकूलतामें उतना ही आनन्द हो—यही साधन है।

८१३. संसारके विषयकी जितनी फालतू स्फुरणा हो, चिन्तन हो, उसे एकदम त्याग दो। भगवद्विषयक चिन्तन निरन्तर करो,

यही सबसे बढ़कर बात है।

८१४. आपसमें लोगोंके पास बैठनेसे बहुत व्यर्थ समय चला जाता है, इसलिये बहुत सावधान रहना चाहिये।

८१५. नामजप करते-करते जिसे बहुत आनन्द आने लग जाय, नाम छोड़ना बहुत भारी लगे, उसे नाम प्राणोंके समान प्यारा लगने लगता है।

८१६. हमारे तो यही अष्टांगयोग है—सत्संग, सत्-शास्त्रोंका स्वाध्याय, श्वासद्वारा नामजप, वाणीका मौन, एकान्तवास, विषयोंसे वैराग्य, उपरति, समयकी अमोलकतापूर्वक मृत्युको याद रखना—अनन्य चिन्तनमें यह विशेष सहायक है।

८१७. चौदह तरहका रोजगार नहीं करना चाहिये—
खोदना (खान आदिका काम), हाड़, मांस, चमड़ा, रुधिर, शराब, लोहा, लकड़ी, कल (मशीन), चर्बी, लाख, नील, कच्चा टसर, ईंट-भट्ठा।

८१८. दूसरेसे नफा तय करके कम देना नहीं, अधिक लेना नहीं।

८१९. भाव तय करके नापमें, वजनमें, गिनतीमें कम नहीं देना चाहिये, उसी प्रकार दूसरेकी वस्तु ज्यादा नहीं लेनी चाहिये, चीज बदलकर नहीं देनी चाहिये तथा दूसरेकी वस्तु बदलकर नहीं लेनी चाहिये।

८२०. तीन काम बहुत नुकसान करनेवाले हैं, साधनमें बहुत बाधा देते हैं—१. सट्टा-फाटका २. मकान बनवानेका काम, ३. मुकदमा-मामला। इन तीनों कामोंको बाद दे देना चाहिये।

८२१. चार साक्षात् मृत्यु हैं—प्रमाद, आलस्य, दुराचार, भोग।

८२२. श्मशानमें चित्तकी वृत्ति जैसी होती है, वैसा वैराग्य सदा रहे तो मुक्तिमें कोई शंका नहीं।

८२३. सत्संग करते समय, मरनेके समय, बीमारीके समय,

श्मशानमें शव जलता देखकर जैसी वृत्ति होती है, वैसी वृत्ति सदा रहे तो मुक्तिमें कोई शंका नहीं।

८२४. संसारके पदार्थ शरीर-निर्वाहकी दृष्टिसे काममें लेवें, भोगकी दृष्टिसे नहीं।

८२५. देश, काल, संग तीनों साधक भी हैं, बाधक भी हैं।

८२६. मरनेके लिये उत्तम देश काशी है, बसनेके लिये उत्तराखण्ड है।

८२७. काल—

१. सुषुम्ना चले उस समय उत्तम काल है, उस समय स्वाभाविक ही प्रसन्नता और निर्मलता होती है, यह सबसे उत्तम काल है।

२. शास्त्र पर्वको उत्तम काल मानता है, पर यह दानपुण्यके लिये उत्तम है। साधनमें भी लिया जाय तो ठीक है।

३. सदाके लिये सबसे उत्तम काल ऊषाकाल है (तीन बजे भोरका समय)। सूर्यके उदय एवं अस्तका काल दो नम्बर है। सबसे उत्तम वह समय है जिस समय चित्त प्रसन्न रहे।

४. कीर्तनके बादका समय उत्तम है।

ध्यानके लिये ये काल उत्तम हैं—कीर्तनके पश्चात्, सुषुम्ना चलनेके समय, ऊषाकाल, जिस समय चित्त प्रसन्न रहे।

८२८. संग—

महापुरुषोंका संग उत्तम है, इनके संगसे देश-काल दोनों उत्तम हो जाते हैं, बिना जाने भी इनकी विशेष महिमा है। शास्त्रोंका संग भी उत्तम है।

८२९. ये चार साक्षात् अमृत हैं—

ईश्वरका चिन्तन, सत्पुरुषोंका संग, सद्गुण-सदाचार, परोपकार।

८३०. दो प्रत्यक्षमें अमृतकी तरह मालूम होते हैं, ऐसा कोई दूसरा

नहीं है—ध्यान और सत्संग, वह ध्यान थोड़े ही परिश्रमसे प्राप्त हो सकता है।

८३१. ध्यानकी दो श्रेणी है—एकान्तमें और काम करते समय।

८३२. ध्यानकी जमावटमें सहायक हैं—सत्संग, भजन, ऊषाकाल, चित्तकी प्रसन्नता। इन सबमें प्रधान ईश्वरकी चर्चा है, इसके समान कोई भी नहीं है।

८३३. सगुण भगवान्‌का दर्शन होनेके बाद तो निर्गुणका तत्त्व वे स्वयं समझा देते हैं।

८३४. आलस्य या तन्द्राके समय ध्यान नहीं करना चाहिये, उस समय ध्यान करनेसे जप भी बंद हो जायगा यानी समय व्यर्थ जायगा।

८३५. साधारण आदमीके लिये छः घंटे सोना ठीक है। योगीके लिये एक पहर अर्थात् तीन घंटे पर्याप्त हैं—

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥ (गीता ६।१७)

दुःखोंका नाश करनेवाला योग तो यथायोग्य आहार-विहार करनेवालेका, कर्मोंमें यथायोग्य चेष्टा करनेवालेका और यथायोग्य सोने तथा जागनेवालेका ही सिद्ध होता है।

८३६. साधन, आहार-विहार-व्यवहार, शयन, जीविका प्रत्येक दो-दो पहर करना चाहिये, कम-से-कम एक पहर तो ध्यान करना चाहिये।

८३७. ध्यानका समय—प्रातःकाल शौच-स्नानके बाद, भोजनके पहले। जिस जगह सोते हैं उस जगह ध्यान नहीं करना चाहिये, उस जगह सोनेके परमाणु रहते हैं, अलग जगह ध्यान करना चाहिये।

८३८. जो पुरुष नित्य अग्निहोत्र, बलिवैश्वदेव प्रेमसे करता है

उसकी प्रार्थना अग्नि सुनती है।

८३९. नित्य बलिवैश्वदेव करना चाहिये, उससे सम्पूर्ण भूतोंको आहुति दे दी जाती है, केवल दो रोटीका खर्च है, इसे गरीब भी आसानीसे कर सकता है।

८४०. गायत्रीके समान कोई जप नहीं है, श्रुति-स्मृति सब जगह गायत्रीकी महिमा गायी गयी है। यज्ञमें जपयज्ञकी महिमा आयी है, उनमें जपयज्ञ गायत्री ही है। समय मिले तो गायत्रीका जप अधिक करना चाहिये। समयपर सूर्य भगवान्‌को अर्घ्य देनेमात्रसे ही मुक्ति हो सकती है। इस जगह सूर्यको प्रतिनिधि बनाकर भगवान्‌की उपासना है। सूर्योपासना बहुत भारी प्रेम और श्रद्धासे करे। मैं तो यह विश्वास करता हूँ कि सूर्योपासना करनेवालेको सूर्य भगवान् अवश्य सहायता देंगे।

८४१. अपनी धार्मिक पुस्तकोंमें सबसे बढ़कर गीता है। गीताकी बात बहुत युक्तियुक्त तथा प्रामाणिक है, किसीसे नहीं कट सकती है।

८४२. पूर्वजन्म सिद्ध होनेमें ये छः प्रमाण बहुत महत्त्वपूर्ण हैं— स्तनसे दूध खींचनेकी शक्ति, रोना, हँसना, भय करना, नींद लेना, दुःख-सुखकी अनुभूति।

८४३. हर श्वासमें परमात्माके नामजपका अभ्यास करें। श्वास तो मृत्युपर्यन्त आते हैं। वृथा श्वास नहीं जाने दें।

८४४. मनसे ईश्वरके स्वरूपका चिन्तन करे, हाथसे दूसरोंकी सेवा करे, पैरोंसे तीर्थ करे।

८४५. अपने धर्ममें भक्तिका सबके साथ सम्बन्ध है। सन्ध्योपासना करते हैं, उपासना नाम भक्तिका है, इसमें सबसे बढ़कर ध्यान है, सब काम ध्यानके लिये है। सन्ध्या समझकर करे तो दस मिनट, जपमें दस मिनट, इसके बाद जितना समय

मिले ध्यान ही करना चाहिये।

८४६. किसीको शोक, चिन्ता, भय तो अपने शब्दकोषमें ही नहीं रखना चाहिये।

८४७. स्त्रियोंमें अज्ञान ज्यादा है, इससे चिन्ता बढ़ती है।

८४८. हर समय प्रसन्नचित्त रहना, हर समय आनन्द मानना चाहिये।

८४९. अपनी मूर्खताके कारण ही चिन्ता है चिन्ताके लायक संसारमें कोई चीज नहीं है। उसका जितना अभाव होवे, उतना ही लाभ है।

८५०. हम आनन्दमें मग्न रहें, चारों तरफ शान्तिका भण्डार भरा पड़ा है।

८५१. सन्ध्या-गायत्री बहुत ऊँचे दर्जेकी चीज है, इसका फल ध्यान है।

८५२. जिसका ध्यान लग गया, उसके लिये अन्य किसी साधनकी कोई आवश्यकता नहीं है, पर दूसरा यह बात नहीं समझेगा और देखादेखी कर्म छोड़ देगा, इसलिये नित्यकर्म करना चाहिये। आदरसे किया जाय तो यह बहुत लाभदायक है, लोग आदर नहीं करते।

८५३. सब जगह ईश्वरको देखनेका अभ्यास करें। शास्त्रोंमें लिखा हुआ है कि सब जगह परमात्मा हैं, यही सत्य है, यह बात बलात् मान लेनी चाहिये।

८५४. किसी-किसी समय ऐसी बात आती है कि घोलकर पिला दें। मैं बम्बई गया था, वहाँ एक आदमी मुझे पहनानेके लिये माला लाया। मैंने उससे कहा कि आपलोग तो अपनी दृष्टिसे सम्मान ही करते हैं, पर मुझसे पूछो तो मुझे अपमान-सा लगता है, मुझे तो यह जूतोंकी माला-सी मालूम देती है।

८५५. मान पुष्पोंकी मालासे होता है, अपमान जूतोंकी मालासे होता है, जूतोंके बीचमें पुष्पोंकी भावना और पुष्पोंमें जूतोंकी भावना करके इस तरह समझनेसे '**मानापमानयोस्तुल्यः**' हो जाता है, आगे जाकर उसे मान अपमानकी तरह लगने लग जाता है।

८५६. मनको वशमें करनेके लिये नामजप प्रधान है।

८५७. जिसे लोग जप कहते हैं वह वास्तवमें जप ही नहीं है, लोग तो रुपयोंका जप कर रहे हैं। असली जप वह है, जो मनसे हो, असली जपकी क्रिया प्रेम है।

८५८. एक व्यक्तिने गीताके ७०० श्लोकोंका पाठ कर लिया और एक व्यक्तिने एक श्लोकका अर्थ खूब अच्छी तरह समझकर पाठ कर लिया तो वह बराबर है।

८५९. परमात्माकी जीवोंपर अनन्त दया सदैव है, पर लोग ईश्वरकी दयाको समझते नहीं, इसलिये दया फलीभूत नहीं होती। इसलिये ईश्वरकी दयाको मानना चाहिये। मान लो तो बेड़ा पार है। उनसे प्रार्थना करनी चाहिये कि हे परमात्मा! आप मुझे समझायें, आपके समझानेसे ही मैं समझूँगा, दूसरा कोई समझानेवाला नहीं है।

८६०. हर समय चित्तकी प्रसन्नता रहनेसे सब दुःखोंका नाश हो जाता है।

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते॥ (गीता २।६५)

अन्तःकरणकी प्रसन्नता होनेपर इसके सम्पूर्ण दुःखोंका अभाव हो जाता है और उस प्रसन्नचित्तवाले कर्मयोगीकी बुद्धि शीघ्र ही सब ओरसे हटकर एक परमात्मामें ही भलीभाँति स्थिर हो जाती है।

८६१. प्रतिदिन पन्द्रह मिनट या आधा घंटा एकान्तमें विचार करें कि मेरी उन्नति हो रही है या नहीं हो रही है। विचार करनेसे भजनसे भी ज्यादा लाभ प्रतीत हुआ है।

८६२. जो ईश्वरकी शरण हो जाता है उसे तो जो कुछ हो उसमें ही प्रसन्न रहना चाहिये।

८६३. पंचायतीमें नहीं पड़ना चाहिये, निष्पक्ष रहना बहुत कठिन है, पक्षपात होनेसे साधकका पतन हो जाता है, इसमें निष्पक्ष महान् पुरुष ही रह सकते हैं।

८६४. हर समय प्रसन्न रहनेका उपाय निरन्तर भगवान्‌की स्मृति है।

८६५. निष्काम कर्मसे श्रेष्ठ जप, जपसे श्रेष्ठ जपसहित निष्काम कर्म, इससे भी श्रेष्ठ एकान्तका ध्यान, इससे श्रेष्ठ भगवान्‌के प्रेम और रहस्यकी बातोंको सुनना है।

८६६. धर्म और मोक्षमें पुरुषार्थ प्रधान है, अर्थ और काममें प्रारब्ध प्रधान है।

८६७. वस्तुपरसे ममत्व उठा लेना ही कृष्णार्पण है, जबतक ममता नहीं उठायी, तबतक कृष्णार्पण नहीं हुआ। जबतक बड़ाई सुनकर प्रसन्नता होती है, तबतक वह वास्तवमें कृष्णार्पण हुआ ही नहीं।

८६८. बड़ाई साँप है, चूहोंकी तरह काटती है, जिस समय बड़ाई जहरकी तरह लगने लग जायगी, तब समझना चाहिये कि बड़ाईकी भावना समाप्त हो गयी।

८६९. स्त्रियोंका जो प्रेम है वह चार आना तो ठीक है, बारह आना खराब है। भक्ति-भजन चार आना है, लोगोंको दिखाना दम्भ बारह आना है।

८७०. मैं कई बार विचार करता हूँ कि इन बेचारोंका समय फालतू जा रहा है, इनको कुछ भी कहो, ये लोग मेरे कहनेके

अनुसार कुछ नहीं करते। बार-बार कहना तो नहीं चाहता, किन्तु हारकर कहना पड़ता है, तब भी ये लोग काममें नहीं लेते, कुछ विचार तो रखना चाहिये।

८७१. गीताजीमें एक-एक साधनकी अन्तिम सीमातकका साधन लिखा है।

८७२. प्रश्न—अन्तकालमें किसीको भगवन्नाम या गीता सुनानेसे उत्तम गति प्राप्त होती है, उसमें उसकी पूँजी है या नामका प्रभाव?

उत्तर—वह नामके प्रभावसे उत्तम लोकमें चला जाता है, यह नामकी महिमा है।

८७३. जिस आदमीको बिलकुल चेत नहीं रहे, उसके आगे भी भगवान्‌के नामका उच्चारण करनेसे वह भी उत्तम लोकमें चला जाता है।

८७४. जहाँतक मनुष्यमें शास्त्र-विपरीत अवगुण घटते हैं, वहाँतक उसको भगवत्प्राप्ति नहीं हुई।

८७५. निष्काम अनन्य प्रेम होनेसे भगवान्‌को तुरन्त आना पड़ेगा, भगवान् धक्का देनेसे भी नहीं जायँगे, भगवत्प्राप्तिमें विलम्बका काम नहीं है। विलम्ब तो निरन्तरताका है।

८७६. प्रह्लादजीको जब आगमें गिराया जाता है तब वह हँस रहे हैं और आगमें ईश्वरकी दयाको देख रहे हैं और कह रहे हैं। धन्य प्रभु! आपकी कितनी दया है। प्रह्लाद अमर हो गये। प्रह्लाद भगवान्‌की दयाके तत्त्वको जानने वाले थे। हम भी उस दयाको जान लें तो परम सुखी हो जायँ।

८७७. जो यह समझ लेता है कि भगवान्‌की हमारे ऊपर अपार दया है, उसके हृदयमें आनन्द नहीं समाता। वह अपार अतुलनीय शक्तिवाला परमेश्वर भक्तकी प्रतिज्ञाके लिये

अपनी प्रतिज्ञा तोड़नेके लिये भी तैयार है।

८७८. ईश्वर मेरी वस्तुको अपना लें, पुत्रको मारकर अपने धाममें बुला लें, मेरे मनमें बहुत प्रसन्नता हो तो समझना चाहिये कि यह चीज भगवान्‌के अर्पण हुई।

८७९. ईश्वरके किसी भी विधानमें यदि मन मैला हो तो हम कहाँ भगवान्‌को मानते हैं! हमलोगोंको मानना चाहिये कि वह प्यारा प्रभु हमारी चीजोंको नष्ट करता है, इसमें बहुत रहस्य है। भगवान्‌के प्रत्येक विधानमें उनकी अपार दयाको देख-देखकर सदा सब समय प्रसन्न रहे।

८८०. साधकको समाज-सम्बन्धी पंचायतीसे साँपकी तरह डरना चाहिये, यानी उपराम रहना ही लाभप्रद है।

८८१. सभी मनुष्योंमें इतनी शक्ति है कि इस जन्ममें परमात्माकी प्राप्ति कर सकते हैं। शक्ति नहीं मानते, यह उनकी मूर्खता है।

८८२. हमलोगोंके पूर्वमें हुए असंख्य जन्मोंसे यह जन्म बहुत श्रेष्ठ है। ऐसा जन्म पहले हुआ ही नहीं, यदि पूर्वमें भी ऐसे जन्मोंका मौका लगता तो आजतक कभीका उद्धार हो जाता, लाभ उठाना पुरुषार्थपर भी निर्भर है।

८८३. मैं जो गहना-कपड़ाके सुधारके लिये कहता हूँ, वह भी कल्याणमार्गमें लाभ पहुँचानेवाला है, इसलिये कहता हूँ, नहीं तो इस बखेड़ेमें नहीं पड़ता। विलासितासे मुक्तिमार्गमें बहुत हानि पहुँचती है।

८८४. अंग्रेजोंकी जड़ जमनेमें ईसाई धर्मका प्रचार ही है। अंग्रेजोंकी जड़ काटनेमें विदेशी वस्तुओंका त्याग भी एक प्रधान उपाय है।

८८५. अंग्रेजोंसे मैंने यह बात ली है जैसे पादरी ईसाई धर्मका प्रचार करते हैं, उसी तरह हमें भी अपने धर्मका प्रचार

करना चाहिये।

८८६. जिस प्रकार हमारी बल, बुद्धि, विद्याका नाश हो, अंग्रेज उसी प्रकारकी चेष्टा करते हैं।

८८७. सबको यह इच्छा रखनी चाहिये कि हमारा परमेश्वरमें प्रेम हो, यह शुभ इच्छा है, कामना नहीं है। भगवान् तो प्रेम करना चाहते हैं, इसलिये उनके साथ प्रेम होनेमें क्या बाधा है?

८८८. जैसे हमलोग हैं, मैं प्रेम करता हूँ और आपलोग भी चाहते हैं तो अपना प्रेम होता है, दिन-दिन बढ़ रहा है, यदि आप कहें कि मेरा प्रेम नहीं है सो यह बात नहीं है, क्योंकि आपका प्रेम नहीं होता तो आप इस जगह कैसे आते? कलकत्ताके बीचमें तो बहुत स्टेशन आते हैं। प्रेम है तभी तो आना होता है। मेरा भी प्रेम है, तभी तो मैं आपलोगोंके साथ इतना प्रेमका बर्ताव करता हूँ।

८८९. आराम निकम्मा बनानेवाला है।

८९०. बीमारी विघ्न नहीं है, विघ्न मानना कमजोरी है। कमजोरीको बलात् दूर कर दो, विघ्न मत मानो।

८९१. कल-काँटाका काम स्वास्थ्यको खराब करनेवाला है, परतन्त्र बनानेवाला है, सात्त्विक नहीं है, पर बढ़ता दीख रहा है।

८९२. एकान्तमें अकेलेका ही मन प्रसन्नतासहित अधिक रमे, ऐसी चेष्टा करनी चाहिये।

८९३. एकान्तमें ध्यानके समय चाहे जैसी ही कामकी बात याद आये, उसको उसी समय त्याग दे। उस संकल्पको त्याग देना बहुत ही लाभकारक है।

८९४. रुपया कमानेके उद्देश्यसे काम करनेसे मन संसारमें रम जाता है, इसलिये संसारका काम भगवत्प्रीतिके उद्देश्यसे ही

करना चाहिये। वह भी विशेष ज्यादा नहीं करना चाहिये, क्योंकि अधिक काम करनेसे उद्देश्य परिवर्तित हो जाता है।

८९५. सांसारिक वस्तु तथा व्यक्तियोंके साथ मिलाप कम रखना चाहिये।

८९६. सांसारिक बात बहुत कम करनी चाहिये।

८९७. बिना पूछे किसीका अवगुण नहीं बताना चाहिये तथा उनकी तरफ ध्यान भी नहीं देना चाहिये।

८९८. सबके साथ निष्काम और समभावसे प्रेम रखना चाहिये।

८९९. नामजपका निरन्तर अभ्यास रखना चाहिये, इसे कभी नहीं छोड़ना चाहिये। जो इसमें बाधक हो, उसको छोड़कर हर्ष, और प्रेमसहित नामजपको निरन्तर करता रहे।

९००. शरीर-निर्वाहकी भी परवाह नहीं करनी चाहिये। शरीरमें अहंकार आनेसे शरीर-निर्वाहकी चिन्ता होती है, इसलिये शरीररूपी कैदके भीतर जानबूझकर कभी प्रविष्ट नहीं होना चाहिये।

९०१. वस्तुओंको देखनेसे ही उनमें आसक्ति उत्पन्न होती है, इसलिये समदृष्टिका अभ्यास करना चाहिये। यानी एक धनुष जितनी दूरतक दृष्टि रखते हुए चलना चाहिये। बड़े शहरोंमें ज्यादा-से-ज्यादा तीन धनुषतक भी दृष्टि रखकर चल सकते हैं।

९०२. गीतामें ज्ञानका कितना खजाना भरा पड़ा है! समुद्रका थाह आवे तो गीताका थाह आवे—

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रसंग्रहैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता॥

'गीताका ही भली प्रकारसे श्रवण, कीर्तन, पठन-पाठन, मनन और धारण करना चाहिये, अन्य शास्त्रोंके

संग्रहकी क्या आवश्यकता है? क्योंकि वह स्वयं पद्मनाभ भगवान्‌के साक्षात् मुख-कमलसे निकली हुई है।'

९०३. मेरे तो भगवद्गीता ही आधार है।

९०४. परमात्माके नामका जप, गीताके अभ्याससे प्रत्यक्ष लाभ होता है, इससे बढ़कर संसारमें कोई नहीं है। सत्संग, अच्छे पुरुषोंका संग इसकी जड़ है, परमात्माका ध्यान इसका फल है।

९०५. भगवान्‌के भजनके समान दुनियामें कोई साधन नहीं है। भगवान्‌का नाम बिगुल है। इससे नाना प्रकारकी स्फुरणा, क्लेश, कर्म—सबका नाश हो जायेगा।

९०६. उच्चतर साधन—एक श्वासका मोल तीन लोक बताते हैं, देखो तो यह मूल्य भी थोड़ा लगता है, परन्तु आपलोगोंको तो यह भी बहुत भारी लगता है। एक श्वासमें तो परमात्मा मिल सकते हैं। यह श्वास अमूल्य है क्योंकि इसका मूल्य परमात्मा हो गया। एक श्वाससे ऐसा पुरुष बन सकता है कि हजारों पुरुषोंको एक क्षणमें भगवान्‌के दर्शन करा दे, इतनी शक्ति मनुष्य उपार्जन कर सकता है। एक मिनटमें भगवान्‌को बुलाकर मिला सकता है। इससे बढ़कर क्या उन्नति होगी?

९०७. भगवान् रामचन्द्रजी एक मिनटमें करोड़ों आदमियोंको संग ले गये, उनके दर्शनोंसे लोगोंका कल्याण हो गया।

९०८. हमलोगोंमें आरामका दोष बहुत ज्यादा है, इसको लात मार दो।

९०९. घरके आग लग रही है और आप सोये हुए आराम कर रहे हैं। वृक्ष पूर्वजन्ममें बहुत सोते थे, इसलिये आज इनको वृक्ष होना पड़ा।

९१०. भगवान्‌की दयाका प्रवाह परम पावनी गंगाके प्रवाहसे भी बढ़कर नित्य निरन्तर बहता रहता है, परन्तु श्रद्धा-पुरुषार्थ-

हीन अभागा पुरुष उसके निकट रहकर, वास करके भी गंगासे विशेष लाभ नहीं उठा पाते। जो गंगाके महत्त्वको जानते हैं, वे श्रद्धालु पुरुषार्थी उस गंगासे लाभ उठाकर पवित्र होते हैं। उसी प्रकार परमात्माकी दयाके महत्त्वको जाननेवाले पुरुष उस परमात्माकी दयासे विशेष लाभ उठा लेते हैं।

९११. परमात्मा और परमात्माकी दया सब जगह समान भावसे परिपूर्ण होनेके कारण सबको सुलभ है, परन्तु इस बातको नहीं समझनेके कारण ही अभागे जीव उस दयासे वंचित रहकर संसारमें भटकते फिरते हैं, जैसे घरमें पड़े हुए पारसको पारस न समझकर दरिद्र आदमी दरिद्रताके दुःखसे दुःखी होकर भटकता फिरता है।

९१२. परमात्माकी पूर्ण दया समझनेके साथ ही मनुष्य निर्भय हो जाता है और शोक-मोहसे तर जाता है। हर एक कामके सिद्ध और असिद्ध होनेमें उसे परमात्माकी दया-ही-दया प्रतीत होती है, इसलिये उसके राग-द्वेष भी नहीं रहते। शोक, मोह, राग, द्वेषके अत्यन्त अभावके कारण उसमें काम-क्रोधादि अवगुण तो घट ही नहीं सकते।

९१३. अनिच्छा और परेच्छासे जो कुछ भी क्रिया होती है, साधक परमात्माका पुरस्कार समझकर सबमें परमात्माकी दयाका ही अनुभव करता है और वह स्वेच्छासे अपनी स्वार्थसिद्धिके लिये कोई भी कर्म नहीं करता, क्योंकि जब उसके ऊपर परमात्माकी पूर्ण दया हो जाती है, तब उसके निजका कोई स्वार्थ नहीं रहता।

९१४. सांसारिक पुरुष भोगोंकी वृद्धिसे परमात्माकी दयाकी वृद्धि और भोगोंकी कमीसे दयाकी कमी समझता है; वैराग्यवान् ऐश, आराम, भोगके नाशको परमात्माकी दया समझता है।

वास्तवमें विचारनेसे दोनों ही भूलमें हैं। दयाका भोगोंसे कोई सम्बन्ध नहीं है।

११५. परमात्माके तत्त्वको समझनेवाला पुरुष भोगोंकी प्राप्ति एवं नाश दोनोंको परमात्माकी क्रीडा समझता हुआ इन दोनोंमें परमात्माकी दयाका ही दर्शन करता है। ज्यों-ज्यों परमात्माकी दयाके तत्त्वको जानता जाता है, त्यों-ही-त्यों परमात्माका सच्चा भक्त बनता जाता है। जब पुरुष यह समझ लेता है कि परमात्मासे बढ़कर कोई नहीं है, तब वह एक क्षण भी परमात्माको छोड़कर किसी दूसरेको नहीं भज सकता।

११६. आग लगानेवाला, विष देनेवाला, निहत्थेको शस्त्रसे मारनेवाला, धन हरनेवाला, मकानादिको छीननेवाला, स्त्रीको हरनेवाला ये छः प्रकारके आततायी होते हैं, इन आतायियोंको मारनेमें, मरवानेमें कोई भी दोष नहीं होता। फिर भी धर्म और दयाकी दृष्टिसे मारनेकी अपेक्षा समझाकर काम निकालना उत्तम है, इसीलिये भगवान् श्रीकृष्णने दुर्योधन आदिको समझानेकी चेष्टा की, किन्तु उसने किसी प्रकार संधि करना स्वीकार नहीं किया, क्योंकि उनका मरण अवश्यम्भावी था।

११७. आदमी बैठ जाते हैं तो सांसारिक बातें चलती रहती हैं। यह पूरी नहीं होती समय पूरा हो जाता है। समय परिमित मिलता है, उसे ऊँचे-से-ऊँचे काममें बिताना चाहिये।

११८. अन्याययुक्त लोभको तो जरूर ही त्यागना चाहिये। अनुचित लोभको भी जरूर त्यागना चाहिये।

११९. लोभ किसका नाम है? रुपया चाहे जैसे मिल जाय, चाहे अन्यायसे चाहे न्यायसे। खर्च करनेके योग्य अवसर आनेपर खर्च नहीं किया जाता है, वह भी लोभ है।

९२०. न्यायसे उपार्जित धन भी मुक्ति करनेवाला नहीं है।

९२१. वैश्यको अपने कर्मसे ही मुक्ति मिल जाती है (गीता १८।४६)।

९२२. गीता, रामायण आदि धार्मिक पुस्तकें हैं, इन्हें नीचे नहीं रखो, मालाको सावधानीसे रखो, नीचेके अंगोंसे स्पर्श नहीं होने दो। पुस्तक अपनेसे उच्च स्थानपर रखनी चाहिये। हम जितना आदर इन्हें देंगे, वे भी हमारा उतना ही आदर करेंगे।

९२३. जो भक्तिमार्गमें लग जाता है, भक्तिके प्रतापसे उसके कर्म तो अपने-आप ही पवित्र हो जाते हैं।

९२४. जबतक झूठ-कपट है, तबतक मुक्ति लाखों कोस दूर है, बुरे आचरण करनेवालेको परमात्माकी प्राप्ति नहीं होती। यदि इसके पहले हम बुरे आचरण करते थे तो कोई बात नहीं, आगे हम दुराचार छोड़ देंगे तो मुक्त हो जायँगे। ये भगवान्के वचन हैं—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

(गीता ९। ३०-३१)

यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यभावसे मेरा भक्त होकर मुझको भजता है तो वह साधु ही माननेयोग्य है; क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है। अर्थात् उसने भलीभाँति निश्चय कर लिया है कि परमेश्वरके भजनके समान अन्य कुछ भी नहीं है।

वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहनेवाली परम शान्तिको प्राप्त होता है। हे अर्जुन! तू निश्चयपूर्वक सत्य

जान कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता।

९२५. ज्ञानके समान पवित्र कोई वस्तु नहीं है।

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति॥ (गीता ४। ३८)

इस संसारमें ज्ञानके समान पवित्र करनेवाला नि:संदेह कुछ भी नहीं है। उस ज्ञानको कितने ही कालसे कर्मयोगके द्वारा शुद्धान्त:करण हुआ मनुष्य अपने-आप ही आत्मामें पा लेता है।

९२६. निष्काम कर्मयोगकी बड़ी भारी महिमा है, इसका थोड़ा भी पालन महान् भयसे तार देता है—

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥ (गीता २। ४०)

इस कर्मयोगमें आरम्भका अर्थात् बीजका नाश नहीं है और उलटा फलरूप दोष भी नहीं है; बल्कि इस कर्मयोगरूप धर्मका थोड़ा-सा भी साधन जन्म-मृत्युरूप महान् भयसे रक्षा कर लेता है।

९२७. **त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।**
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥ (गीता १६। २१)

काम, क्रोध तथा लोभ—ये तीन प्रकारके नरकके द्वार आत्माका नाश करनेवाले अर्थात् उसको अधोगतिमें ले जानेवाले हैं। अतएव इन तीनोंको त्याग देना चाहिये। इनका त्याग करो, इनका त्याग करके कर्म करनेवालेका कल्याण होता है।

९२८. **प्रश्न**—लोभके कारण कितना पाप होता है?

उत्तर—जहाँ लोभ है वहाँ पापकी कोई कमी नहीं।

९२९. लाख काम छोड़कर वही काम करना चाहिये जिसके लिये

संसारमें आये हैं। जबतक शरीर कायम है तबतक अपने कामको तुरन्त ही पूरा कर लेना चाहिये।

९३०. चिन्ता, भय, शोक मूर्खतासे होता है, प्रारब्धसे नहीं; चेष्टा करनेसे ये नष्ट हो सकते हैं।

९३१. हानि-लाभ, जय-पराजय, जीवन-मरणसे मुक्त होना अपने हाथकी बात नहीं है, पर हर्ष-शोक और राग-द्वेष आदिसे मुक्त होना अपने हाथमें है।

९३२. संसारके पदार्थोंकी प्राप्तिमें प्रधान प्रारब्ध ही है।

९३३. जिस पैसेमें अपना हक नहीं, उसपर हाथ डालनेवालेको नरकमें जाना पड़ता है।

९३४. लोभ न्याययुक्त होना चाहिये।

९३५. दूसरेके हकसे अपना जीवन धारण करना दूसरेके मांससे अपना मांस बढ़ानेके तुल्य है।

९३६. दोषोंको जितना आप छिपायेंगे, उतनी ही आपकी आत्मा मलिन होगी।

९३७. यदि हम नियम ले लें कि अबसे झूठ, कपट, दूसरेका हक नहीं लेंगे तो आजके पहले जो पाप किये हैं, वे सब पिछले पाप भी माफ हो जायँगे।

९३८. हमलोग कहलाते तो साहब हैं, परन्तु हैं वास्तवमें चोर। आमदनी बढ़े चाहे मत बढ़े, अपने तो जहाँ अन्याय-कपटसे आमदनी हो वह काम करना ही नहीं है।

९३९. त्रिलोकीका दान क्षणभरके भगवान्‌के ध्यानके बराबर नहीं है।

९४०. भगवान्‌की भक्ति औषध, अनुपान बड़ोंको प्रणाम है। बलिवैश्वदेवसे सारे विश्वकी तृप्ति हो जाती है। रुपया पतन करनेवाला है, वही सत्कार्यमें लगाया जाय तो कल्याण करनेवाला हो जाय। हमारे पास बल है, वही साधनमें

लगाया जाय तो कल्याण कर दे, वही प्रमादमें लगा तो नरकमें ले जायगा।

९४१. बहुत सोचकर विचार करो कि एक दिनका समय करोड़ रुपया खर्च करनेपर भी नहीं मिलता, वह समय कौड़ियोंके भाव जा रहा है। साधन तेज हो गया तो समझना चाहिये कि जन्म सफल हो गया।

९४२. जो आदमी **'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्'** (गीता ४। ११) इसका तत्त्व समझ जाय, वह एक क्षण भी भगवान्‌को भजे बिना नहीं रह सकता।

९४३. **परहित बस जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥** जो दूसरेके हितमें रत है, उसके लिये भगवान् भी दुर्लभ नहीं हैं।

ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः। (गीता १२। ४)

९४४. भगवान्‌के विषयका जितना प्रचार करें, उतना ही बढ़ता है।

९४५. मैंने तो गीताका झाग निकाला है, आप चूटिया निकालें तब आनन्द आये। सबको मक्खन निकालकर खिलाओ।

९४६. प्रत्येकके हृदयमें ज्ञान, श्रद्धा, प्रेम हो, फिर संसारमें नीति, भक्ति, धर्म, ज्ञान, प्रेमका खूब प्रचार हो। हमें आशावादी होना चाहिये, आशा रखनी चाहिये; आशावादी होता है वही चेष्टा करता है।

९४७. गीतातत्त्वविवेचनीके नम्र निवेदनकी बहुत महिमा, बहुत प्रभाव है। मैं नम्र निवेदनका रोज पाठ करनेके लिये कैसे कहूँ? जो इसे नित्य पढ़े, उसका मैं ऋणी हूँ। जो धारण करे वह तो मुझे बेच सकता है। गीताको जो धारण करे वह भगवान्‌को बेच सकता है। यानी वह चाहे जिसे भगवान्‌का दर्शन करा सकता है।

९४८. समय बहुत भयंकर आ रहा है, खूब भजन करना चाहिये। भगवान्‌से प्रार्थना करे हे नाथ! मेरे प्राण आपके भजन-ध्यान करते हुए ही जायँ।

९४९. इस समय तो सब चाह छोड़कर भगवान्‌के भजन-ध्यानमें लग जाओ, बहुत दिन रुपया कमाया, अब तो सब झंझट छोड़कर इसमें समय लगाओ। हर समय प्रसन्नचित्त रहो।

९५०. निष्कामभाव, समता, ईश्वरकी स्मृति तीनोंमेंसे कोई भी एक चीज रह जाय तो कल्याण हो जाय।

९५१. आप लाख काम करें और साथ-साथ भगवान्‌की स्मृति रखें तो आपका कल्याण है।

९५२. भगवान् बिना ही कारण प्रेम करनेवाले हैं, बड़े दयालु हैं, इतना जाननेमात्रसे कल्याण हो जायगा।

९५३. जैसे कोई आदमी भगवान्‌के लिये दुःखी हो जाय, साधन न भी हो तो बेड़ा पार हो जायगा। हे नाथ! मेरेसे साधन नहीं होता, आपके दरबारमें आलसीकी गुंजाइश होवे तो मेरा उद्धार हो सकता है। इस समय कलियुग है, इसलिये आपके दरबारमें सूखी अर्जीकी भी सुनवायी होती है। कुछ भी मत करो तब भी इससे लाभ होगा। रोज प्रातःकाल उठते ही यह प्रार्थना करे—हे प्रभु! मेरेसे कुछ नहीं होता है, मेरी तरफ भी ख्याल करो।

९५४. सात्त्विक कर्म जितना ज्यादा करेगा, उतनी जल्दी ही मुक्ति होगी।

९५५. मैं तो यह कह रहा हूँ कि प्रारब्धमें जो धन मिलनेवाला होगा, वह तो घर बैठे ही बिना व्यापार किये मिल जायगा।

९५६. आलस्यको मारनेके लिये पवित्र एवं सात्त्विक आहार करे, २०० ग्रामकी भूख हो तो १५० ग्राम खाये। दूध, फलसे

शरीर-बुद्धिके लिये लाभ है। राजसीमें यत्किंचित् नमक रख ले।

९५७. स्त्रियोंमें श्रद्धा तथा उत्तम भाव भी है, पर इनका तप वाणी-द्वारा बहुत नष्ट हो जाता है तथा कड़ा वचन बोलनेसे नष्ट हो जाता है।

९५८. लोग बालकोंमें झूठमूठमें भूतका संस्कार उन्हें डरानेके लिये डाल देते हैं। कोमल हृदयमें स्वाभाविक संस्कार जम जाता है। छोटे बालकमें जो आदत डालेंगे वह पड़ जायगी। जो माता झूठ नहीं बोलेगी, उसका बालक भी सत्यवादी होगा, जैसे मदालसा।

९५९. बालकोंमें निर्भयताका संस्कार, सत्यताका संस्कार डालना चाहिये, उन्हें उत्तम उपदेश देना चाहिये।

९६०. हँसी, मसखरी, कुत्सित व्यवहार नहीं करना चाहिये। छिपाकर चीज नहीं मँगानी चाहिये। खराब व्यवहार नहीं करना चाहिये।

९६१. काममें अगाड़ी भोगमें पिछाड़ी। सेवाका कोई भी काम हो उसमें अपना नम्बर पहला रखना चाहिये। भोगमें पिछाड़ी यानी बढ़िया चीज लोगोंको देकर बचे उस चीजको काममें ले।

९६२. घरमें नौकर-नौकरानी हों, उनको गला हुआ, सड़ा हुआ फल नहीं देना चाहिये।

९६३. सम है वह अमृत है, बाकी विष है।

९६४. संसारमें त्यागसे ही शान्ति मिलती है। सब बातोंमें त्याग सीखना चाहिये।

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति॥ (गीता २।७१)

जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओंको त्यागकर ममतारहित, अहङ्काररहित और स्पृहारहित हुआ विचरता है, वही शान्तिको प्राप्त होता है अर्थात् वह शान्तिको प्राप्त है।

९६५. अच्छी चीज घरकी और स्त्रियोंको देनी चाहिये। घटिया चीज अपने लेनी चाहिये, इसमें अपना अहोभाग्य माने।

९६६. यह नहीं मानना चाहिये कि ऐसा युग है, कलियुग है। युग मनुष्यके अधीन है, मनुष्य युगके अधीन नहीं है। ऐसा होनेसे उपदेश व्यर्थ हो जायगा।

९६७. दुराचार-दुर्गुण कलियुगकी सामग्री है, इनको त्यागना चाहिये। बुरी आदतको त्याग दो, अच्छी दैवी सम्पदाको ग्रहण करो।

९६८. जिस घरमें कलह आ जाता है, वहाँ कलियुग प्रवेश कर जाता है, इसके साथ-साथ क्लेश आता है, इसके बाद काल आता है। जिस कारणसे कलह आवे, उसको घरमें मत रखो। काले रंगको मत रखो, धोतीकी किनारी काली मत रखो, बाल भी अधिक मत रखो, इसमें कलियुग आता है, अपवित्रताकी जगह कलियुग आता है, कलहसे हृदय खराब होता है।

९६९. सत्में सत्-युग है। सत् परमात्माका नाम है, धर्मका स्वरूप है, इसकी तरफ विशेष खयाल करना चाहिये। आपने सत्का पालन कर लिया तो सब बातें स्वतः ही आ जायँगी। प्रत्यक्ष देख लें झूठ बोलनेसे मनमें ग्लानि होती है, सत्य बोलनेवाला निर्भय रहता है। इन बातोंको काममें लेनेकी कोशिश करनी चाहिये।

९७०. मनुष्योंको चाहिये कि ऐसे कटुवचन न बोलें, जिससे किसीका दिल दुखे। मन्दिरके तोड़नेसे ज्यादा बुरी बात

किसीके दिलको तोड़ना है। माताओं और बहनों! आजहीसे यह प्रतिज्ञा कर लो कि सत्य वचन बोलेंगी और किसीको कटुवचन भी नहीं बोलेंगी। मनुजी महाराज कहते हैं वचन अतिप्रिय और हितकारक बोलना चाहिये।

९७१. भोजन पवित्रतासे बनावें, मनको शुद्ध रखें, घरको शुद्ध रखें, वस्त्रोंकी सफाई रखें—ये स्त्रियोंके मुख्य कार्य हैं।

९७२. बाहर-भीतरसे एक-सा भाव रखे, सरल व्यवहार करें। शरीरसे, वाणीसे, मनसे, कर्मसे किसीकी हिंसा न करें। चलते, बैठते, सोते, जागते खयाल रखें कि चीटींतककी भी हिंसा न हो जाय और किसीका भी दिल न दुखे।

९७३. क्रोध एक अग्नि है, क्रोधसे कलह पैदा होता है। क्रोध और कलहके कारण कलियुग आ जाता है, इसलिये हृदयमें शान्ति रखते हुए क्रोधका त्याग करना चाहिये।

९७४. हृदयमें मनकी पवित्रता, संतोष, समता और उत्तम भाव धारण करे, इनको धारण करनेसे स्त्री, पुरुष कितनी ही नीचतासे उच्चताको प्राप्त हो जाते हैं।

९७५. जब हमको भजन प्राणोंके समान प्रिय लगेगा तो पाप नष्ट हो जायँगे।

९७६. जैसे अनुकूलताका सत्कार करते हैं, उससे भी बढ़कर प्रतिकूलताका सत्कार करना चाहिये। प्रतिकूल भावका नाश हो जाय तो तुरन्त कल्याण हो जाय।

९७७. नियमित रूपसे नित्य श्रद्धापूर्वक भगवान्‌के नामका जप करे। हो सके तो २२००० नाम-जप करे अथवा षोडश मंत्रकी १४ माला फेरे तथा सन्ध्या और गायत्री-जप करके मानसिक पूजा, परमात्माका ध्यान और गीताके कम-से-कम एक अध्यायका अर्थसहित पाठ करे।

९७८. संसारके विषय-भोगोंमें वैराग्य रखे। मन इन्द्रियोंको वशमें करके विषय पदार्थोंसे हटाकर भगवान्‌में लगानेका प्रयत्न करे।

९७९. नित्य सत्संग करें। सत्संग न मिले तो सत्-शास्त्रोंका अनुशीलन करें।

९८०. नित्य विनयपूर्वक घरमें सब एकत्र होकर कीर्तन करें तथा नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक सुधारके लिये परस्पर परामर्श करें एवं एक आदमी गीता, रामायण आदि सत्-शास्त्र सुनावे और दूसरे सब सुनें। इस प्रकार नियमितरूपसे नित्य कम-से-कम एक घंटा बितावें।

९८१. चलते-फिरते, उठते-बैठते, खाते-पीते, सोते-जागते नित्य-निरन्तर श्वास या वाणीसे भगवान्‌के नामका जप करते हुए मनसे सर्वत्र भगवान्‌का चिन्तन करें।

९८२. दुःखी, अनाथ, गरीब आदमियोंकी तन, मन, धनसे सेवा करें। भूखेको अन्न, नंगेको वस्त्र, बीमारको औषध और विद्यार्थियोंको पुस्तक आदि दें।

९८३. किसीका चोरीका माल न ले। व्यापारमें वजन, नाप और संख्यामें कम न दे और अधिक न ले। सेलटैक्स और इनकम टैक्सकी चोरी न करे। ब्लैक मार्केटसे कोई माल न बेचे। यदि घरमें भोजनके लिये अन्न और पहननेके लिये कपड़ा आदि ब्लैकमें लाना पड़े तो निरुपाय बात है। माल खरीदनेमें चाहे मोल-मुलाई करे पर बेचनेके समय सबको एक दाम कहे।

९८४. ऐश, आराम, स्वाद आदि भोग और झूठ, कपट, चोरी, जारी, अभक्ष्य भक्षण, बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू आदि मादक वस्तुओंका सेवन, सट्टा-फाटका, जुआ आदि दुराचार तथा आलस्य, प्रमाद एवं काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग, द्वेष

आदि दुर्गुणोंको विषके समान समझकर कतई त्याग दे।

९८५. क्षमा, दया, शान्ति, समता, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य आदि सद्‌गुण तथा यज्ञ, दान, तप, सेवा, तीर्थ, व्रत आदि सदाचारको अमृतके समान समझकर सेवन करें।

९८६. शयनके समय व्यर्थ संकल्पोंका प्रवाह हटाकर मनमें भगवान्‌के नाम, रूप, गुण, प्रभाव, लीला आदिके संकल्पोंका प्रवाह बनाकर सोयें।

९८७. भगवान्‌की प्राप्ति बहुत कठिन नहीं है, किन्तु दूसरोंको भगवान्‌की प्राप्ति करा देना कठिन है।

९८८. जनसमूहका संग कम करना चाहिये, जो जैसा संग करता है, उसीका असर उसपर पड़ता है।

९८९. प्रेम करनेके लायक एक परमात्मा ही है।

९९०. निर्भयता, धीरता, संतोष, शान्ति, प्रसन्नता—ये शरणागतके लक्षण हैं।

९९१. बन सके तो दोनों समय ठीक समयसे सन्ध्या, दो या तीन माला गायत्री-जप, कम-से-कम एक अध्याय गीताका अर्थसहित पाठ, सात या चौदह माला प्रेमसहित सोलह नामवाले 'हरे राम' मन्त्रकी, प्रेमभक्तिप्रकाशके अनुसार भगवान्‌की पूजा, ध्यान, स्तुति नित्य नियमसे करना चाहिये।

९९२. भोजन-वस्त्रका संयम, व्यापारमें सत्यभाषण, लोभ, कपटको त्यागकर सबके साथ स्वार्थ छोड़कर विनयपूर्वक प्रेमका सत् बर्ताव करनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

९९३. जो आदमी लोगोंको परमात्माकी तरफ लगा देता है, उसकी दलालीमें भगवान् उसके हाथ बिक जाते हैं। महात्माको मोल खरीदना चाहो तो सहज उपाय यह है कि उसके सिद्धान्तका प्रचार करनेके लिये अपना तन, मन, धन लगा

देवे और अपने-आपको भी उसके अर्पण कर देवे, यही भगवान्‌को खरीदनेका उपाय है। यह बात सबसे बढ़कर है।

९९४. जैसे एक छोटी-सी चिनगारी सारे ब्रह्माण्डको जला सकती है, वैसे ही एक जीवन्मुक्त पुरुष सारे संसारका उद्धार कर सकता है। यह भी उसकी बहुत थोड़ी महिमा बतायी है। जैसे एक गंगा संसारकी प्यास बुझा सकती है, परमात्माको प्राप्त मनुष्यकी उपमा तेल-बत्तीके सहित दीपककी है। एक दीपकसे सारे दीपक जल सकते हैं। यह बहुत दामी नयी बात है।

९९५. सबसे ज्यादा लाभ महापुरुषके संगसे होता है, उनकी रायके अनुसार, प्रसन्नताके अनुसार, संकेतके अनुसार चलनेसे शीघ्र लाभ होगा।

९९६. महापुरुषकी ओर जानेसे ही काम-क्रोधादि चोर, डाकू तो पहलेसे ही भाग जाते हैं।

९९७. भगवान् कहते हैं कि गीताका प्रचार करनेसे मेरी प्राप्ति होगी। गीता-प्रचारके कुछ प्रकार इस प्रकार हैं—

१. पुस्तक खरीदनी।

२. १०/५ लोग बैठकर गीताकी चर्चा करें।

३. सब भाई यह नियम ले लें कि कम-से-कम दो श्लोकका नित्य मनन करेंगे।

४. इसके लिये तत्पर होकर चेष्टा करें।

९९८. मुझे तो सबसे प्रिय काम यही है—गीताका खूब प्रचार करना एवं स्वयं उसे खूब काममें लेना।

९९९. आप किसी कामको नहीं करें और दूसरेके लिये कहें, यह बुद्धिमें भेद उत्पन्न करना है।

१०००. गीताका भाव घर-घरमें, गाँव-गाँवमें खूब प्रचार कर दे,

उसके समान भगवान्‌को कोई प्रिय नहीं लगेगा।

१००१. आप जितना कर सकें, उतनी ही चेष्टा करें, आपकी शक्तिसे ज्यादा भगवान् नहीं चाहते।

१००२. भगवान् वास्तवमें कह रहे हैं, भगवान् गीता प्रचारकको यह अधिकार भी दे देते हैं कि वह दूसरेको भी भगवान्‌से मिला दे।

१००३. आत्माका कल्याण नीयतसे है, जितना नीयतका दाम है, उतना आचरणका नहीं है। भावसे ही लाभ है।

१००४. अपने तो भक्तिका भाव तेज करे, जितना भाव तेज हो, उतना ज्यादा लाभ होगा। यह मौका सदा नहीं रहेगा। इस समय जो लाभ उठाना चाहे वह उठा लेवे।

१००५. हमारे पास जो रुपया है वह सब जनताका है।

१००६. धनमें ममता रहनेसे ही वह अपवित्र होता है। जिसमें ममता नहीं है वह पवित्र है। जैसे गंगाजलमें पेशाब डालनेसे अपवित्र हो जाता है।

१००७. पुत्र, स्त्री और धनमें ममता करना मूर्खता है।

१००८. भगवान्‌का भक्त जब भगवान्‌को देखता है तब उसके रोम-रोममें प्रेम व्याप्त हो जाता है।

१००९. एक क्षणमें प्रलय हो जायगी, इसलिये इस समयको अभी काममें लाओ। पद-पदपर भगवान्‌की दयाका दर्शन करना चाहिये।

१०१०. कितना ही बड़ा काम हो, भगवान्‌की कृपासे सब कुछ हो सकता है, भगवान्‌की शक्तिको समझो तो कुछ भी दुर्लभ नहीं है। आपको भय करनेकी आवश्यकता नहीं है, एक मामूली आदमी सारे संसारमें भगवान्‌के भावोंका प्रचार कर सकता है। भगवान् गीतामें कहते हैं उसके

समान मेरा प्यारा काम करनेवाला न तो कोई है और न होगा।

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि॥ (गीता १८।६९)

१०११. प्रथम तो गीताका प्रचार अपनी आत्मामें करना चाहिये। पहले सिपाही बनकर कवायद सीखेंगे तभी तो कमान्डर बनकर सिखायेंगे। आप जितनी मदद चाहें उतनी मिल सकती है। एक ही व्यक्ति स्वामी शंकराचार्यजीने कितना प्रचार किया, भगवान्‌की शक्ति थी।

१०१२. हरेक प्रकारसे गीताका प्रचार करना चाहिये। भगवान्‌की भक्तिके सभी अधिकारी हैं। गीता बालक, स्त्री, वृद्ध, युवा—सभीके लिये है।

१०१३. सार यही है कि भगवान्‌के कामके लिये कटिबद्ध होकर लग जाना चाहिये। **स्वधर्मे निधनं श्रेयः** अपने धर्म-पालनमें मरना भी पड़े तो कल्याण है। बन्दरोंने भगवान्‌का काम किया, उनमें क्या बुद्धि थी! गीताका प्रचार भगवान्‌का ही काम है। निमित्त कोई भी बन जाय, भगवान्‌की शक्तिको मत भूलो *'तव प्रताप बल नाथ'* मान-बड़ाई-प्रतिष्ठाके ठोकर मारकर काम करो, फिर देखो भगवान् पीछे-पीछे फिरते हैं, सारा काम स्वयं ही करते हैं, तैयार होकर करो, डरो मत, विश्वास रखो।

१०१४. श्रेष्ठ कर्म वही है जिससे लोगोंका उपकार हो। साधु पुरुषोंकी क्रिया मूल्यवान् होती है।

१०१५. महात्माने वस्त्र दिया, जिसने वस्त्र लिया उसके चित्तमें महात्माका चित्र आया, उसे बार-बार याद करेंगे तो परमात्माकी प्राप्ति विषयक लाभ होगा।

१०१६. किसीको क्षुधाकी निवृत्तिके लिये अन्न दिया, आप देंगे और एक महात्मा देगा दोनों सेवा समानभावसे होगी, किन्तु महात्माके स्पर्श किये हुए अनाजसे जो भगवत्-विषयकी जागृति होगी, वह साधारण पुरुषके दिये हुए अनाजसे थोड़े ही होगी। महात्माकी सारी क्रिया भगवत्प्राप्ति करानेसे ओतप्रोत रहती है।

१०१७. कोई महात्मा कपड़ा-अन्न नहीं बाँटता, अपितु क्रय-विक्रय करता है तो उससे भी वह मुक्तिदान ही कर रहा है। सत् परमात्मा है, उनकी हर एक क्रिया उसकी प्राप्तिमें मदद करनेवाली होती है।

१०१८. उपकार ऐसी चीज है जिससे मन बदल जाता है। दुर्योधन कैसा दुष्ट था! उसपर भी युधिष्ठिरके उपकारका असर पड़ा। इसलिये यह कहा जाता है कि आपके साथ कोई कैसा ही व्यवहार करे, आप उसके साथ अच्छा ही व्यवहार करें।

१०१९. **गरल सुधासम अरि हित होई। तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई॥**
विष अमृतके समान हो जाता है, वैरी मित्र बन जाता है, यह ईश्वरकी भक्तिका प्रताप है। ईश्वरकी भक्ति जिनमें होती है, उनके आचरण सत् होते हैं।

१०२०. बुराई करनेवालेके साथ जो बुराई नहीं करता, उससे भी बुराई करनेवालेका हृदय बदल जाता है, उसके बदले उसके साथ भलाई करे, उसका तो कहना ही क्या है!

१०२१. महात्माका स्पर्श किया हुआ अन्न है, उसे ले जाकर कोई खाता है, जब एक राजयक्ष्माके रोगीकी स्पर्श की हुई चीजका असर होता है, तब महात्माओंद्वारा स्पर्श किये हुए अन्नका क्यों नहीं होना चाहिये?

१०२२. जो माँगकर लाया हुआ है वह तो मृत है, जो बिना माँगे मिला है वह अमृत है, जो मूल्य देकर लाया हुआ है वह अमृतसे भी बढ़कर अमृत है।

१०२३. शास्त्रोंमें यह बात आती है कि किसीसे गौहत्या हो जाय तो वह गौकी पूँछ गलेमें डालकर घूमे कि मैं गौ-हत्यारा हूँ, इससे वह हत्यासे छूट जाता है।

१०२४. भगवान्‌के दर्शन जिनको होते हैं, वही कह सकते हैं, कि भगवान् मिलते हैं। दूसरा कैसे कह सकता है? इसमें कुछ झूठ थोड़े ही है।

१०२५. अपने मनके अनुकूल या प्रतिकूल जो भी घटना होती है, वह अपने लिये प्रभुका मंगलमय विधान है। उसके प्राप्त होनेपर प्रसन्न रहे। प्रभु मंगल करनेवाले हैं, अनिष्ट तो वे करते ही नहीं।

१०२६. हमलोग सत्संग कर रहे हैं, कोई नास्तिक आदमी आ जाय और अंटशंट पूछने लगे तो उसे विघ्न नहीं समझो, उसमें प्रसन्न होना चाहिये, अगर विघ्न मानें तो नीचा दर्जा है। वह भगवान्‌का भेजा हुआ है, भगवान् परीक्षा कर रहे हैं, अगर विघ्न मान लिया तो फेल हो गये और उसको पुरस्कार मान लेवें तो पुरस्कार है।

१०२७. भगवान्‌की दयाको सकामभावमें मान ले तो नीचे गिरनेकी सम्भावना है। प्रतिकूलमें दया माने तो ऊँचा उठानेवाली है।

१०२८. वैराग्यकी तीव्रता राग-द्वेषको खा जाती है। समता उसका फल है।

१०२९. भगवान्‌ने दया करके मनुष्यका शरीर दे दिया तो यह अन्तका ही जन्म है। चौरासी लाख योनियोंमें मनुष्यका

शरीर अन्तका है, साधन करके उससे काम बना ले तो यह अन्तिम जन्म है।

१०३०. एक आदमी एक करोड़ रुपया रोज कमाये, वह भी कहता है कि कम है, इसी तरह यदि चौबीसों घंटे भजन होने लगे तो भी साधक कहेगा कि अभी भजन थोड़ा होता है।

१०३१. हमलोगोंका जो साधन है वह बेगार काटनेकी तरह है। अगर प्रेम हो जाय तो भजन छूटे ही नहीं। जैसे प्रह्लाद, मीरा आदिको कितना कष्ट हुआ, पर उनसे भजन छूटा नहीं।

१०३२. भजन हो तो सब रोमोंसे नामजप होता है, यह बात बहुत प्रेम-श्रद्धासे करे तब मालूम पड़ती है। भजन श्रद्धा-विश्वाससे करे।

१०३३. बीमारीमें यदि ज्ञानी ठीक होने लग रहा है तो उसे हर्ष नहीं है। अगर ज्यादा बीमारी होती है तो उसको शोक नहीं होता, वह तो दोनों अवस्थाओंमें समान रहता है।

१०३४. गीताके एक भी श्लोकके अनुसार जीवन बना लें, उसी समय भगवान् मिल जायँगे। यह जो संसार आपको दीखता है उसकी जगह भगवान्‌को देखने लग जायँ उसी समय भगवत्प्राप्ति है।

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥ (गीता ७। १९)

बहुत जन्मोंके अन्तके जन्ममें तत्त्वज्ञानको प्राप्त पुरुष, सब कुछ वासुदेव ही है—इस प्रकार मुझको भजता है, वह महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है।

१०३५. भगवान्‌से बढ़कर और कोई चीज नहीं है, इतनी बात मान लेनेपर बेड़ा पार है। इसकी पहचान यह है—

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत॥ (गीता ७।१९)

हे भारत! जो ज्ञानी पुरुष मुझको इस प्रकार तत्त्वसे पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकारसे निरन्तर मुझ वासुदेव परमेश्वरको ही भजता है।

१०३६. संसारके पदार्थ इच्छा करनेपर नहीं मिलते, केवल भगवान् ही ऐसे हैं जो इच्छा करनेसे मिलते हैं। तीव्र इच्छा हो जाय तो और किसी साधनकी जरूरत नहीं है।

१०३७. आप पीपलमें एक लोटा जल डालें, यदि आपका यह भाव हो जाय कि भगवान्‌को पानी पिला रहा हूँ तो उसी समय भगवान् प्रकट हो जायँ। उसकी पहचान क्या है? भगवान्‌को पानी पिलानेके समय जो प्रसन्नता होती है, वही प्रसन्नता होनी चाहिये। यदि वह प्रसन्नता नहीं होती है तो आपने भगवान्‌को पानी नहीं पिलाया।

१०३८. परमात्मा सबमें व्यापक हैं, सबकी सेवा परमात्माकी सेवा है। सबको सुख कैसे पहुँचे यह भाव होना चाहिये। चाहे जूते बेचे, चाहे पुस्तक बेचे, चाहे दवाई बेचे—बात एक ही है। अपने तो भगवान्‌का कार्य कर रहे हैं। भगवान्‌के सुखके लिये कर रहे हैं, अपना उसमें कुछ भी स्वार्थ नहीं है।

१०३९. अपने घरमें कोई अतिथि आयें, उस समय भगवान् आये हैं यह भाव सोलह आना हो जाय तो आपको उसी समय भगवान् मिल जायँगे।

१०४०. एक गाय खड़ी है, उसे रोज खिलाते हैं, अपना भाव है कि भगवान्‌को रोटी खिला रहा हूँ। इतनी प्रसन्नता हो जितनी भगवान्‌को खिलानेमें हो तो उसी समय प्रसन्नता

बढ़कर भगवान्‌की प्राप्ति हो सकती है।

१०४१. ऐलोपैथिक औषधि नहीं लेनी चाहिये, चाहे कुछ भी हो। वैद्यकी दवा भी शास्त्रोक्त शुद्ध हो तो लेनी चाहिये, अन्यथा नहीं लेनी चाहिये। होना तो वही है जो भगवान्‌ने रच रखा है।

१०४२. जो होता है वह प्रारब्धका फल है। भगवान्‌का विधान मानकर हर समय संतुष्ट रहे। हर समय आनन्द माने, बीमारी हुई, वह पापका फल है।

१०४३. माता, पिता, गुरु आदिकी सेवा परम धर्म है और बाकी सब उपधर्म है। जो इनकी सेवा करता है, वह तीनों लोकोंको जीत लेता है।

१०४४. चोरी, व्यभिचार, झूठ, कपट आदि जो पाप हो गये हैं, यदि मनुष्य भविष्यमें नहीं करे और भगवान्‌की शरण हो जाय तो सारे माफ हो जाते हैं।

१०४५. सर्वोपरि चीज एक है, उसका नाम चाहे विष्णु रख दो, शिव रख दो, अल्लाह, खुदा जो चाहो सो कह दो, उसे प्राप्त करना है। शिवभक्तोंके लिये शिव, विष्णुभक्तोंके लिये विष्णु, शक्ति भक्तोंके लिये शक्ति है।

१०४६. अपने तो सेवा करनेके लिये बैठे हैं। कोई चीज ले तो आनन्द, नहीं ले तो आनन्द। वापस लेनेमें सबसे ज्यादा आदर, आनन्द होना चाहिये। जो ग्राहक माल ले जायँ, उनसे व्यवहार करनेमें जैसी प्रसन्नता हो, उससे ज्यादा प्रसन्नता उसके साथ होनी चाहिये जो माल नहीं ले तथा जो वापस लाये, उससे व्यवहार करनेमें सबसे ज्यादा प्रसन्नता होनी चाहिये। जो माल नहीं ले, केवल हैरान करे तो समझना चाहिये कि भगवान् परीक्षा ले रहे हैं।

१०४७. नाम, रूप, मार्ग अलग-अलग होते हुए भी वास्तवमें एक ही है। जो लोग एक-दूसरेकी निन्दा करते हैं, वे वास्तवमें परमात्माके ही एक अंगकी निन्दा करते हैं। निन्दा करनेवाला स्वयं ही निन्दनीय है।

१०४८. श्रद्धा बनी रहेगी तो उद्धार होनेका रास्ता है। मूल कट गया तो वृक्ष गिर पड़ेगा, इसलिये भगवान्‌ने कहा—जो जिसको पूजता है, मैं वहीं उसकी श्रद्धा कायम करता हूँ। मुझसे भी कोई भाई पूछे, किसी भी सम्प्रदायकी उपासना करनेवाला हो, उसीमें श्रद्धा करनेकी बात कही जाती है।

१०४९. भगवान्‌का नामजप मानसिक करना अच्छा है, वह न हो तो श्वाससे करे, वह भी न हो तो वाणीसे ही करना ठीक है। ध्यान भी हृदयमें हो तो बहुत अच्छा, अन्यथा बाहर करना ही अच्छा है।

१०५०. वास्तवमें भीतरके त्यागसे कल्याण होता है, यदि बाहर-भीतरका दोनों हो तो सोनेमें सुगन्ध हो जाती है।

१०५१. झूठी निन्दा करनेवाला तो गिरता ही है, पर सच्ची निन्दा भी नहीं करनी चाहिये, उसमें भी अपना ही पतन है।

१०५२. अन्यायसे पैसा पैदा करनेवाला लोभी नहीं पापी भी है, न्यायसे पैदा करनेवाला भी लोभी है। जहाँ खर्च करना न्याय हो, वहाँ नहीं करनेवाला भी लोभी है। वैराग्यवान् हो तो न्यायसे पैदा होना भी उसे अच्छा नहीं लगता।

१०५३. हर एक भाईके दिलमें यह बात आ जानी चाहिये कि भगवान्‌के मन्दिरमें भगवान्‌की जगहपर किसी मनुष्यकी पूजा करनी घृणा करनेयोग्य बात है।

१०५४. भगवान्‌के नामरूपकी तरह कोई मनुष्य अपनी पूजा करवाने लगे तो यह पतनका ही रास्ता है।

१०५५. यदि कोई कहे गुरु-परम्पराकी रक्षा करनेके लिये ऐसा करता हूँ तो अपने यह ठेका क्यों लेना चाहिये? रक्षा करनेवाला अपने-आप सोचेगा, करेगा। यह सिद्धान्तकी बात है, सिद्धान्तका ही डाली-पत्ता है, उसीका अंश है।

१०५६. ममता, अहंता, आसक्ति, कामनाको लेकर ही संकल्प हैं, जिसमें यह न हो, वह खूब पेट भरकर कर्म करे।

१०५७. जबतक सारी दुनियाका उद्धार न हो, तबतक उन्नतिकी गुंजाइश है। ऐसा पुरुष बन सकता है। सारे जीवोंका कल्याण हो सकता है, यह सिद्धान्तकी बात है। अतः ऊपर उठता ही रहे, उन्नति करता ही रहे। कहीं रुकावट नहीं है।

१०५८. प्रत्येक मनुष्यको एक क्षण मुक्तिके लिये मिलता है, यदि वह क्षण चाहिये तो मरनेवालेके पास होनेवाले कीर्तनमें शामिल हो जाओ। जितने शामिल हुए सब मुक्तिके अधिकारी हो गये। इस कामके लिये समय देना सबसे ज्यादा दामी है।

१०५९. माँ या तो सुमित्रा या मदालसा या मैनावती मानी गयी हैं। ये माता पुत्रके लिये साक्षात् महात्मा हैं। वही नारी नारी है, जिसका पुत्र भगवान्‌का भक्त हो।

१०६०. अपने स्वार्थ-त्यागका व्यवहार करो। संसारसे भलाई लेकर जाओ। जो अपने साथ बुराई-वैर करे, उसके साथ भी भलाई और प्रेम करो।

१०६१. सेवा बड़ी उत्तम चीज है। अपने तो तन, मन, धन किसी भी तरहसे बने, अपनी शक्तिके अनुसार सेवा करे। भगवान् कहते हैं—

ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः॥ (गीता १२। ४)

वे सम्पूर्ण भूतोंके हितमें रत योगी मुझको ही प्राप्त होते हैं।

१०६२. कर्म और पदार्थोंका त्याग नहीं कराया जा रहा है, फलके आश्रयका त्याग कर दो। कर्म भले ही उसी तरह करो। कर्मोंके फलके आश्रयको छोड़कर परमात्माका आश्रय ले लो। मैं जोरके साथ कहता हूँ कि आप रात-दिन काम करते हैं, चाहे जो काम करते रहें, पर आश्रय भगवान्‌का रखें—

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्॥ (गीता १८।५६)

मेरे परायण हुआ कर्मयोगी तो सम्पूर्ण कर्मोंको सदा करता हुआ भी मेरी कृपासे सनातन अविनाशी परमपदको प्राप्त हो जाता है।

१०६३. गंगा बहती है, कितने लोगोंको बहाकर ले जाती है, गंगाको पाप नहीं लगता। पाप लगता है भीतरमें अहंकार होनेसे, भीतरमें स्वार्थ होनेसे, फलकी इच्छा होनेसे।

१०६४. स्वार्थरहित सारी क्रिया माफ है, बिजली स्वार्थपर गिरती है।

१०६५. भोजन करो पर स्वाद मत देखो। जैसे कुएँमें पत्थर गिरे ऐसे भोजन करो।

१०६६. स्वार्थका त्याग करके जो कर्म करता है, उसे कर्म नहीं बाँध सकते हैं। मोक्ष चाहनेवालोंने उसी प्रकार कर्म किये हैं। पहले तीर्थोंमें लोग आते थे तो कभी कोई चीज मुफ्तमें नहीं लेते थे, पर आजकल तो वह विचार नहीं रहा।

१०६७. ऊँची जातिवाले नीची जातिकी सेवा कर सकते हैं, बल्कि भंगी, चमारकी सेवा करना तो और भी ज्यादा

महत्त्वकी है। गधे-कुत्तेकी सेवा भी करनी चाहिये। एकनाथजीने रामेश्वरम्से बढ़कर गधेको जल पिलाना उत्तम समझा। हाँ, इनकी सेवा करके स्नान कर लेना चाहिये।

१०६८. भगवान् रामके सबसे ऊँचे आचरण हैं। हर वक्त आचरण करते समय भगवान् रामको सामने रखकर आचरण करें कि इस वक्त हमारी जगह राम होते तो क्या करते।

१०६९. गीताका आदरपूर्वक पाठ करो। गीताका आदर आप करेंगे तो गीता आपका आदर करेगी।

१०७०. मंत्रका हम आदर नहीं करते, इसीलिये सिद्धि नहीं मिलती। मंत्रका आदर करेंगे तो मंत्र हमारा आदर करेगा, यानी कल्याण कर देगा। गायत्री-जपके समय अर्थका खयाल रखकर जप करें। अर्थका खयाल रखकर एक माला फेरना सौ माला फेरनेसे भी बढ़कर है।

१०७१. 'हरे राम' महामंत्रको सभीके उपासक जप सकते हैं, भगवान् रामको सामने देखें।

१०७२. संध्या समयपर ही करनी चाहिये। जैसे औषधि समयपर लेनेसे ही काम करती है, उसी तरह सन्ध्या भी ठीक समयसे करे।

१०७३. ऐसा निष्काम बनना चाहिये कि यदि राम-नामके बदलेमें कोई तुम्हें सुवर्णसे भरी हुई पृथ्वी देता हो तो उससे बदली मत करो, क्योंकि राम-नाम सत्य है और सोनेसे भरी हुई पृथ्वी असत्य है। असत्य वस्तुके लिये सत्यका बदला कदापि नहीं करना चाहिये।

१०७४. जब नाम याद आये तब मनमें बहुत प्रसन्नता करनी चाहिये कि देखो मेरे ऊपर परमात्माकी कैसी कृपा है कि

नाम याद आया। नाम याद आना हमारे वशकी बात थोड़े ही है।

१०७५. जिसने नामका प्रभाव जाना है, वह भगवान्‌के नामको छोड़कर कभी भी सांसारिक बातोंका चिन्तन नहीं करेगा।

१०७६. जिस समय तुम्हें भगवान्‌की याद आये तो तुम जानो कि भगवान्‌ने हमारे ऊपर कृपा करके हमारे सिरपर हाथ रखा है। फिर भी यदि तुम उस नामको छोड़ दोगे तो भगवान्‌का हाथ अपने ऊपरसे हटाना यानी उतारना हुआ।

१०७७. करोड़पति लोग हाय-हाय करते मर रहे हैं, रुपये उनकी रक्षा नहीं कर सकते। पिता-पुत्र अदालतमें लड़ रहे हैं, रुपया रक्षा नहीं कर सकता। पति-पत्नी लड़ते हैं, रुपया रक्षा नहीं कर सकता, रुपया सन्तान पैदा नहीं कर सकता, रुपया आपको जवान नहीं बना सकता। अबतक आपको जो मिले, रुपयादास मिले, उन्होंने रुपयोंका महत्त्व समझाया। भगवान्‌के दास मिलते तो भगवान्‌के महत्त्वको समझा देते।

१०७८. पाण्डव लोग बहुत बार हारते रहे, परन्तु भगवान् श्रीकृष्णका अपने ऊपर हाथ देखते तो कभी उनका उत्साह भंग नहीं होता था। नीति, धर्म और ईश्वरका भरोसा रखनेपर कमजोर सेना भी वीर बन सकती है।

१०७९. भगवान्‌के भक्तको तो भगवान्‌के नाम, रूप, गुणका प्रचार करना चाहिये। मनुष्यके क्षणभंगुर नाशवान् शरीरको पुजवानेसे क्या लाभ है?

१०८०. भक्त तो अपने मालिककी ही पूजा चाहता है, उसीके नामका प्रचार चाहता है। वह नौकर नालायक है, बेईमान

है, भगवान्‌को धोखा दे रहा है, जो भगवान्‌के बदलेमें अपने नाम-रूपको पुजाता है। मालिकको दूकानपर अपना नाम चलानेवाला सेवक क्या मालिकको अच्छा लग सकता है?

१०८१. भगवान् कहते हैं यह शरीर अनित्य है, इसलिये शीघ्र-से-शीघ्र मेरे भजनमें लग जाओ, अपना कर्तव्य-पालन करो, नहीं तो फिर हानि उठानी पड़ेगी।

१०८२. गीता भगवान्‌के मुँहसे निकली है। गीता जाननेवाला सारे संसारका कल्याण कर सकता है। गीताका प्रचार करनेवालेके समान भगवान्‌को कोई प्यारा नहीं है। गंगाके लिये यह बात नहीं मिलेगी, अतः सिद्ध हो जाता है कि गीता गंगासे बढ़कर है।

१०८३. गीतातत्त्वविवेचनीमें लिखे प्रश्नोत्तरमें प्रवेश करके विवेचन करे और खूब मनन इस प्रकार करे कि सारी गीताका भाव हमारे दिमागमें घूमने लगे। गीता हमारेमें रमे और हम गीतामें रमें। गीताका जो भाव है, वह हमारे रोम-रोममें बैठ जाय, यह गीताका हमारेमें रमना है और उसमें लिखी बातोंमें मन लगावें, यह हमारा उसमें रमना है।

१०८४. गीताके एक श्लोक और एक ही चरणको धारण कर ले तो उद्धार हो जानेपर सारी गीताको भी इसलिये याद करे कि भगवान्‌का प्रिय बनना है, क्योंकि यह भगवान्‌का सिद्धान्त है, भगवान्‌का हृदय है। गीताकी जितनी महिमा गायी जाय उतनी थोड़ी है। हमें जितना समय मिले, उसमें लगावें और उसे हृदयमें धारण करके क्रियामें लायें।

१०८५. मरनेके समय गीताके श्लोकका उच्चारण करता हुआ मरे या भाव समझता हुआ मरे तो भी कल्याण हो जाता है।

१०८६. शास्त्रोंमें तो यहाँतक आया है कि मरते समय गीताकी पुस्तक मनुष्यके ऊपर, मस्तकपर या सिरहाने रख दे तो भी कल्याण हो जाता है, फिर हृदयमें धारण करे तब तो बात ही क्या है?

१०८७. जैसे हनुमान्‌जी महाराजने राम-नामको रोम-रोममें रमा लिया था, इसी तरह गीताको रोम-रोममें भरे, रोम-रोममें रमा लेवे।

१०८८. गीताका असली प्रचार तो यह है कि अपने आचरणसे वैसे करके दूसरेको प्रेमसे समझा दे। गीताकी एक भी बात किसीको पकड़ा दे तो यह गीताका असली प्रचार है। जीवन बना दे, अर्थको समझाकर तात्पर्य बतला दे, धारण करा दे।

१०८९. गीताके श्लोक मन्त्र हैं। गीतामें एक-एक बात तौल-तौलकर रखी है, गीताको पाँचवाँ वेद भी मानो तो कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

१०९०. किसीका उपकार करनेसे उसे जो सुख होता है और वह उपकार करनेवालेकी प्रशंसा करता है, उस बड़ाईसे प्रसन्न होनेवाला अन्धकारमें ही है।

१०९१. किसीके द्वारा की हुई बड़ाई सुनकर प्रसन्न होना और प्रशंसा पानेके लिये दूसरेका उपकार करनेकी भावना होना भी सकामभाव ही है।

१०९२. निष्कामभावसे कैसी प्रसन्नता होती है, यह निष्कामभावसे कर्म करनेवाला ही जान सकता है। उस प्रसन्नताकी जाति ही दूसरी है। कहीं प्रतिबिम्बसे सूर्य दिखाया जाय तो उस प्रतिबिम्बके सूर्यमें और असली सूर्यमें कितना अन्तर है? इसी प्रकार उस आनन्दमें अन्तर है।

१०९३. निष्कामभाव ही अमृतरूप है, नित्य है, अमर है। आज हम एक अच्छा कार्य कर रहे हैं, उसको दूसरोंके द्वारा निन्दा करनेपर सुनकर यदि छोड़ देते हैं तो वह निष्काम कर्म नहीं था, अन्यथा निन्दा या स्तुतिसे क्यों छोड़ते?

१०९४. वाणीसे, शरीरसे गीताके भावोंका प्रचार करना चाहिये। शिवजी काशीमें मुक्ति बाँटते हैं। राजा जनक जैसे मुक्तिका सदाव्रत बाँटते थे, उसी तरह गीताके भावोंका प्रचार करनेवालेका अधिकार हो जाता है।

१०९५. शरीरका तो नाश हो जायगा। जबतक मृत्यु न प्राप्त हो तबतक इससे जो काम लेना हो, वह ले लेना चाहिये।

१०९६. बहुत ऊँचे कोटिके महापुरुषके तो दर्शन, स्पर्शसे कल्याण हो जाता है, जैसे भगवान्‌के दर्शन, स्पर्शसे हो जाता है।

१०९७. साधारण महापुरुषकी आज्ञाके पालनसे कल्याण हो जाय इसमें तो बात ही क्या है? प्रेरणाके अनुसार करनेसे ही कल्याण हो जाता है।

१०९८. सारा संसार भगवान्‌का स्वरूप है, सारे संसारकी चेष्टा भगवान्‌की चेष्टा है। इस प्रकार समझनेवालेको भगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शनका फल प्राप्त हो जाता है।

१०९९. महापुरुषके लिये यह बात भगवान् कहते हैं—

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः॥ (गीता ३। १८)

उस महापुरुषका इस विश्वमें न तो कर्म करनेसे कोई प्रयोजन रहता है और न कर्मोंके न करनेसे ही कोई प्रयोजन रहता है। तथा सम्पूर्ण प्राणियोंमें भी इसका किञ्चिन्मात्र भी स्वार्थका सम्बन्ध नहीं रहता।

११००. यह श्लोक (गीता ३। १८) परमात्माकी प्राप्तिवाले पुरुषोंके

लिये है, किन्तु उनके द्वारा कर्म हुए हैं, क्योंकि उनका सम्पूर्ण भूतप्राणियोंमें अपना निजका कुछ भी स्वार्थका प्रयोजन नहीं रहता।

११०१. हमलोग यह समझते हैं कि काम करते बहुत दिन हुए, अब इसे समाप्त करें, फिर पीछे कोई-न-कोई अपने-आप ही काम चला सकता है। हमलोगोंको काम बड़े उत्साहके साथ कटिबद्ध होकर चलाना चाहिये, जैसे मैं बहुत उत्साहके साथ काम चलाता हूँ।

११०२. व्यवहार बहुत ऊँचे दर्जेका हो, ऐसा प्रयत्न करना चाहिये। आपलोगोंको तो पुस्तक-व्याख्यानका बहुत सहारा मिल रहा है। आपलोग समझते हैं कि मैं कुछ नहीं कर सका। आपलोग भूलते हैं, सारे काम भगवान् ही करते हैं, अपने तो केवल निमित्तमात्र हैं। पुरुषार्थ सारा भगवान् ही कराते हैं, केवल निमित्तमात्र बनना है, करना-कराना तो सब उन्हें है।

११०३. महापुरुषोंकी बात आपको सुनाता हूँ, उनकी तो सारी क्रिया अनुकरण करनेके योग्य है। कोई भी क्रिया अनुकरणीय नहीं हो ऐसी बात नहीं है।

११०४. आत्माके उद्धारके लिये हमें थोड़ा भी समय नहीं मिलता, हमारा बहुत समय व्यर्थ चला जाता है।

११०५. विचारकर देखो कि मनुष्य-शरीर किस कामके लिये है।

११०६. भगवान्‌की विशेष दया है कि हमलोग इस जगह (गीताभवन, स्वर्गाश्रम) आये हैं। ऐसे स्थानपर आकर खाली हाथ नहीं जाना चाहिये।

११०७. भगवान्‌की दयाका प्रवाह गंगाके प्रवाहसे भी बढ़कर बह रहा है।

११०८. समय रुकता नहीं, यहाँसे जानेका समय भी नजदीक आ

रहा है। जो कुछ करना हो सो कर लो, अन्यथा घोर पश्चात्ताप करना पड़ेगा।

११०९. सबसे उत्तम काम वह है जिससे भगवान्‌की प्राप्ति अतिशीघ्र हो। इसके दो उपाय हैं—ईश्वरका हर समय निरन्तर चिन्तन करना और दूसरोंके हितमें रत रहना।

१११०. शरीर रत्नोंकी खान है—नवधाभक्ति रत्न है। सदाचार सोना है। दूसरोंको आराम व सुख पहुँचाना चाहिये। बुरे आचरणसे बचना चाहिये तथा बुरे भाव नहीं करने चाहिये।

११११. ईश्वरकी दयाके रहस्यको समझनेसे कल्याण होनेमें विलम्बका काम नहीं है।

१११२. भगवान्‌की दयाका पद-पदमें दर्शन करना चाहिये।

१११३. हमलोग जितनी दया समझते हैं, उतनी ही दया फलती है।

१११४. पद-पदपर दयाका दर्शन करके मुग्ध होना चाहिये। फिर प्रभुके प्रकट होनेमें विलम्बका काम नहीं है।

१११५. प्रभुके प्रत्येक विधानमें प्रसन्न रहना चाहिये।

१११६. दुःख-सुख प्राप्त होनेमें परमात्माकी दयाका दर्शन करना चाहिये। हम रूठें तो भगवान्‌की शरण कैसे हुए।

१११७. भगवान्‌की शरण होनेपर दुर्गुण हमारे पास आ ही नहीं सकते, यदि दुर्गुणोंपर वश न चले तो प्रार्थना करते ही भगवान्‌की सेना तैयार है।

१११८. हम जब यह निश्चय कर लेंगे कि प्रभुकी हमारेपर दया है, मेरेमें अब यह दुर्गुण आयेगा ही नहीं। जो ऐसा निश्चय कर लेता है, वह जरूर पार हो जाता है।

१११९. दूसरोंकी निन्दा करना एवं सोना यानी आलस्यमें समय

बिताना यह कोयला है। हमलोगोंको तो रत्न निकालना चाहिये। रत्न है—ईश्वरको याद रखना एवं उनकी आज्ञाका पालन करना।

११२०. यह शरीर जानेवाला है, जो इसका तत्त्व समझ जायगा, वह फिर पाँच मिनट भी दूसरे काममें कैसे बितायेगा?

११२१. जैसे शिल्प करनेवाले, मेहनत करनेवाले अपने समयकी कीमत देखते हैं, वे कहते हैं कि हमारे कामका हर्जा होगा। हमलोग उतना भी समयका आदर नहीं करते।

११२२. जिस कामके लिये हमलोग आये हैं, उस कामको पहले कर लेना चाहिये।

११२३. जब समयकी अमूल्यताको जान जाओगे, तब कहोगे कि हमारे पास समय कहाँ है?

११२४. हमलोगोंको खूब जोरोंसे तेजीके साथ चलना चाहिये।

११२५. उन्नति किसका नाम है? शरीर-पोषणका नाम उन्नति नहीं है, धन कमानेका नाम उन्नति नहीं है, भोग भोगनेमें भी उन्नति नहीं है। सच्चे धनको कमानेमें यानी परमात्माको प्राप्त करनेके लिये समय लगानेका नाम ही उन्नति है।

११२६. महापुरुषका नेत्र पवित्र है, चिन्तन करनेसे मन पवित्र होता है। उनकी चरण-धूलि डालनेसे शरीर पवित्र हो जाता है। सब कुछ पवित्र हो जाता है।

११२७. भगवान् कहते हैं—जो मेरे भक्तजन मेरी कथा कहते हैं, मेरी गीताका प्रचार करते हैं, उनके समान त्रिलोकीमें मेरा प्रिय कोई भी नहीं है।

११२८. जिन पुरुषोंने परमात्माकी प्राप्ति कर ली, उन्होंने सब कुछ पा लिया। सारी त्रिलोकीका सुख उनके एक रोमके समान भी नहीं है।

११२९. जहाँ महापुरुषकी दृष्टि पड़ती है, वहाँकी भूमि पवित्र हो जाती है। उनके सम्मुख पापबुद्धि नहीं उत्पन्न होती, यदि हो भी जाय तो ठहर नहीं सकती, यदि वह भाई डर भी जाय तो वह पाप नहीं कर सकता।

११३०. मुक्तिसे बढ़कर क्या है? यदि कोई समझ जाय तो ऐसा बन जाय जो लाखों आदमियोंका उद्धार कर दे।

११३१. लालटेनके पास जानेसे प्रकाश मिलता ही है, वैसे ही महापुरुषके पास लाभ होता ही है, उनका चिन्तन होता रहे, पास जाकर भले ही मत रहो।

११३२. समय बहुत मूल्यवान् है। समय चला जायेगा तो सदाके लिये रोना ही पड़ेगा।

११३३. भगवान्‌की स्मृति रहनेका उपाय है—मृत्युको हर समय निकट देखना। भगवान्‌की स्मृतिके लिये नामका जप बहुत सहायता करनेवाला है, प्राणसे बढ़कर भजनको समझना चाहिये।

११३४. इस प्रकार याद रखनेसे कल्याण हो सकता है—भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं, सर्वगुणसम्पन्न हैं, निराकार रूपसे भगवान्‌के सिवाय कुछ नहीं है। जलमें जैसे रस-ही-रस है, उसी प्रकार संसारमें भगवान्‌के सिवाय कुछ नहीं है। भगवान् चैतन्य हैं, सब जगह हैं।

गृहस्थका धर्म

११३५. प्रातःकाल पहले उठकर परमात्माको याद करना चाहिये—

त्वमेव माता च पिता त्वमेव। त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव॥
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव। त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

फिर पृथ्वीको नमस्कार करना चाहिये।

११३६. माता-पिताको नमस्कार करना चाहिये, यदि उस समय

माता-पिता उठे हुए न हों तो स्नान करनेके पश्चात् उनको नमस्कार करे।

११३७. नित्य हवन करना चाहिये।

११३८. सन्ध्याका उत्तम समय तो सूर्योदयके पूर्व है। दोपहरकी सन्ध्या दोपहरमें न कर सकें तो भोजनके पहले तो अवश्य कर लेवें। सायंकालीन संध्या सूर्यास्तके पूर्व करनी उत्तम है।

११३९. द्विजातियोंके लिये गायत्री-जपका विधान है। संसारमें गायत्री-जपके समान कोई मन्त्र नहीं है। बीमारी या सूतक (अशौच)के समय मानसिक जप कर लेना चाहिये।

११४०. अपवित्र अवस्थामें भी मानसिक उपासना कर लेनी चाहिये।

११४१. गीताके एक अध्यायका अर्थसहित नित्य पाठ करें।

११४२. भगवान्की मूर्तिकी मानसिक पूजा करें—हे नाथ! आपके सिवाय मेरा कोई आधार नहीं है। आप मेरा उद्धार क्यों नहीं कर रहे हैं? ईश्वर दयालु है, पतितपावन है, आपकी आवाजको जरूर सुनेगा।

११४३. तर्पण करे, फिर भगवान्का ध्यान करे।

११४४. भोजनके समय बलिवैश्वदेव करे। ठाकुरजीके भोग लगाये। अतिथिको भोजन कराये। बालक, रोगी, वृद्ध और गर्भिणीको पहले भोजन करवाकर पीछे आप भोजन करे।

११४५. यज्ञसे बचा हुआ भोजन करनेवाले अमृतको खाते हैं, बचाकर रखा हुआ अन्न विषके समान है।

११४६. हाथ, पैर धोकर संध्या करे। म्लेच्छोंसे यदि स्पर्श हो जाय तो स्नान करके संध्या करे। गायत्रीकी माला एक घंटेमें

सात-आठ हो सकती है। इससे तीन वर्षमें सब पापोंका नाश हो जाता है।

११४७. गुरुजनोंको नित्य प्रणाम करना चाहिये।

११४८. सोते समय, उठते समय भगवत्स्मरण, गीता एवं गजेन्द्रमोक्षका पाठ करना चाहिये।

११४९. नाम-जप नामीका ध्यान करते हुए करें।

११५०. जो काम करें, प्रेमसे, सावधानीसे करें। इस प्रकार करनेसे पचास वर्षके अभ्याससे जो लाभ हुआ है, वह छः महीनेमें हो सकता है।

११५१. यदि गीताके पाठमें भी पन्द्रह मिनट लगाते हैं तो उसका सुधार करें। पचास वर्षोंमें जो लाभ नहीं हो सका, वह एक महीनेमें हो सकता है। एक हजार गुणा लाभ हो सकता है। कैसे? पाठ करते समय अर्थपर ध्यान दीजिये।

११५२. किसी आदमीको अपने ऊपर क्रोध आवे तो उसमें हेतु देखना चाहिये कि मेरे ही कारणसे तो इनको क्रोध आया है, मेरी ही गलती है। किसीके उद्वेगमें तुम हेतु बनते हो तो अपने दोषोंकी तरफ देखो।

११५३. ईश्वरकी इतनी भारी दया पाकर भी हमारी दुर्दशा हो तो हमारी नीचताकी हद हो गयी।

११५४. महत् दयाका फल ही परमात्माकी प्राप्ति है। महान् पुरुषोंकी दयाका नाम ही महत् दया है। महात्माकी दयासे ही जब कल्याण हो जाता है, तब प्रभुकी दया पाकर भी हमारा कल्याण क्यों नहीं होगा?

११५५. अपनी आत्माके उद्धारके लिये विशेष समयकी आवश्यकता नहीं है, अपना पेट भरनेके लिये विशेष परिश्रमकी

आवश्यकता नहीं है। सबके कल्याणकी चाहना होनी कठिन है।

११५६. हमलोगोंके कल्याणमें विलम्ब हो रहा है, इसमें श्रद्धा एवं प्रयत्नकी कमी तथा हमारा स्वार्थ कारण है।

११५७. प्रेमियोंका मिलन ही हमलोगोंने नहीं देखा।

११५८. कई जगह महात्मा कहते हैं—मेरी अच्छी-अच्छी बात काममें लो, खराब मत लो, यह दोष देखनेवालेकी दृष्टिसे ही कहना है, उनकी क्रिया तो कोई भी अनुचित नहीं है।

११५९ एक क्षणका सत्संगका वियोग मृत्युसे भी असह्य होना चाहिये।

११६०. मनुष्य-शरीर पाकर अपना काम बनानेसे पूर्व दूसरे कामकी चेष्टा करना अपने गलेमें फाँसी लगाकर मरना है।

११६१. इस प्रकारका मनुष्य-जन्म, ऐसा संग फिर लाखों-करोड़ों वर्षोंमें भी मिलना मुश्किल है, युगों-युगोंमें मिलना मुश्किल है। यदि हिसाब लगाया जाय तो कई लाख युगके बाद भी मनुष्य-शरीर मिलना मुश्किल है।

११६२. साधनका इतना महत्त्व है कि इस जन्मके थोड़े कालमें परमात्मा मिल सकते हैं। इतने महत्त्वका शरीर पाकर भगवान्‌को छोड़कर दूसरे काममें समय बितानेवाला महामूर्ख है।

११६३. आप मुझे जिस प्रकार प्रत्यक्ष बैठे हुए दिखायी दे रहे हैं, उसी प्रकार मुझे धन बढ़नेका बुरा परिणाम मनसे प्रत्यक्ष दीख रहा है।

११६४. हर समय भगवान्‌को साथ समझे। भगवान् मेरेपर बहुत प्रसन्न हो रहे हैं, मेरेपर बड़ी दयादृष्टिसे देख रहे हैं। यदि

ऐसा न दीखे तो अपने व्यवहारमें खोज करे, मेरेमें दोष होगा, नहीं तो भगवान् तो हर समय दयादृष्टिसे देख रहे हैं। अपनेसे जो कुछ काम हो रहा है, वह भगवान् ही करा रहे हैं। मैं तो भगवान्‌की कठपुतली हूँ, भगवान् मेरेसे जिस तरह कराते हैं, उसी तरह मैं करता हूँ। आप कठपुतली बनकर अपने-आपको भगवान्‌के हाथमें सौंप दें, एक नम्बरकी बात यही है।

११६५. भगवान्‌के लिये कटिबद्ध होकर उनके परायण हो जाय तो एक सालमें काम बन जाय। सब कामको छोड़कर इसके परायण हो जाना चाहिये। साधन तेज होकर अपना कल्याण हो, वह काम करना चाहिये। इस शरीरसे सारे दिन कसकर काम लेना चाहिये। अपने लिये जो सबसे आवश्यक काम है, उसको सबसे पहले कर लेना चाहिये। इसके लिये किसीका मुलाहिजा माननेकी जरूरत नहीं है। यह सबसे बढ़कर दामी बात है।

११६६. धनको तिलांजलि देकर भगवान्‌के लिये लग जाना चाहिये। भगवान्‌के विधानको हँस-हँसकर स्वीकार करना चाहिये। मनके प्रतिकूलको बड़ी प्रसन्नतासे स्वीकार करना चाहिये। अनुकूलमें राग, प्रतिकूलमें द्वेष—इनसे रहित होनेसे अपने-आप शुद्ध हो गये। यह मानना चाहिये कि जो बात होनेवाली है सो होकर ही रहेगी।

स्वार्थ-त्यागसे भगवत्प्राप्ति

जिस आदमीको स्वार्थ-त्यागका लाभ मालूम हो जाता है वह तो स्वार्थका त्याग करता ही रहता है। त्यागसे बहुत लाभ है—यह मानकर त्याग करना भी सकामभाव है।

जैसे एक आदमी अच्छी भूमिमें अन्नका त्याग करता है, ऊसरमें नहीं, इस प्रकार त्याग करनेसे कितना अन्न पैदा होता है। जो पैदा हुआ, उसका फिर भूमिमें त्याग कर दे, उसका फिर जितना हुआ, उसको फिर त्याग कर दे, इस प्रकार बढ़ते-बढ़ते उसका ठिकाना ही नहीं रहता। इस प्रकार यज्ञ, दान, तप कोई मनुष्य करता है, उसका फल सब मनुष्योंके लिये त्याग देना चाहिये।

सबका हित हो, ऐसे परोपकारके द्वारा दूसरोंकी सेवा हुई, यह पुण्य हुआ, उस पुण्यका भी दूसरोंकी सेवाके लिये त्याग कर दे, उस त्यागका जो फल हुआ, उसको भी दूसरोंके लिये त्याग दे तो उस त्यागका ठिकाना ही न रहे।

भगवान्‌का भजन किया, उसका दूसरोंके लिये त्याग कर दिया तो भगवान् बहुत प्रसन्न होते हैं। त्यागका तेज भर गया, उसको भी दूसरोंके लिये त्याग दे, त्याग करता ही जाय। कभी स्वार्थको मंजूर करे ही नहीं। इस प्रकारके त्यागसे परमगतिकी भी प्राप्ति हो तो उसका सबके लिये त्याग कर दे।

भगवान् वर माँगनेको कहें तो सबका उद्धार चाहे। सबका उद्धार करनेका जो भाव है, उस महिमासे भगवान् प्रसन्न हों तो भी अपने तो वही स्वार्थ है कि सबका उद्धार कर दें, यह भाव बहुत ऊँचे दर्जेका है।

हर समय त्यागका ही भाव रखे। जैसे कोई अच्छा पुरुष दूसरेके धनपर अपना अधिकार नहीं जमाता। वह अपना हक

दूसरेके लिये त्याग देता है। इस प्रकारका भाव ही निष्काम कर्म बताया गया है।

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान्॥
श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्॥
(गीता १२। ११-१२)

यदि मेरी प्राप्तिरूप योगके आश्रित होकर उपर्युक्त साधनको करनेमें भी तू असमर्थ है तो मन-बुद्धि आदिपर विजय प्राप्त करनेवाला होकर सब कर्मोंके फलका त्याग कर। मर्मको न जानकर किये हुए अभ्याससे ज्ञान श्रेष्ठ है; ज्ञानसे मुझ परमेश्वरके स्वरूपका ध्यान श्रेष्ठ है और ध्यानसे भी सब कर्मोंके फलका त्याग श्रेष्ठ है; क्योंकि त्यागसे तत्काल ही परम शान्ति होती है। सात्त्विक त्याग ही कर्मयोग है—

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन।
सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः॥
(गीता १८। ९)

हे अर्जुन! जो शास्त्रविहित कर्म करना कर्तव्य है—इसी भावसे आसक्ति और फलका त्याग करके किया जाता है—वही सात्त्विक त्याग माना गया है।

त्यागसे ही शान्ति मिलती है। निष्कामभाव बड़े महत्त्वकी चीज है। उससे बढ़कर कोई चीज है ही नहीं, यह समझमें आ जाय तो निष्काम होने लग जाय।

एक रुपयेके प्रयोजनके लिये आया, एक दुःखित होकर आया, एक आत्मतत्त्वकी जिज्ञासाके लिये आया, एक प्रेमके नाते

आया, उसको और कोई इच्छा नहीं है, यहाँतक कि वह मुक्ति भी नहीं चाहता, वह तो केवल प्रेमके लिये ही आया है। जो निःस्वार्थभावसे प्रेम करता है, वह जितना प्रिय लगता है, उतना कोई नहीं लगता। इस प्रकार जो निष्काम कर्म करता है, उससे भगवान् इतने प्रसन्न हो जाते हैं कि वह उन्हें बेचे तो वे बिक जायँ। वह बेचता नहीं है।

किसीके साथ देख लो, स्वार्थका त्याग होगा तो प्रेम बढ़ेगा। मनुष्योंमें ही प्रेम बढ़ता है तो भगवान्‌में बढ़े, इसमें शंका ही क्या है। भगवान्‌से प्रेम हो गया तो कोई बातकी चिन्ता ही नहीं है। उस प्रेमका यहाँ भी आदर है और वहाँ भी आदर है। स्वार्थके त्यागका भाव होते ही बड़ी प्रसन्नता होती है, फिर यदि वास्तवमें स्वार्थका त्याग है, उसकी तो बात ही क्या है। प्रेमके बढ़नेका यह सरल उपाय है कि जिसके साथ प्रेम करना हो, स्वार्थका त्याग करके उसकी सेवा करो।

जो इस प्रकार करता है, उसको भगवान्‌के हृदयमें स्थान मिलता है। भगवान् स्वयं उसके हृदयमें बैठते हैं। स्वार्थके त्यागका यह प्रभाव है। प्रत्यक्षमें स्वार्थके त्यागवालोंकी प्रतिष्ठा है, किन्तु इस हेतु स्वार्थका त्याग न करे। भगवान् उसको बहुत ऊँची दृष्टिसे देखते हैं। संसारके सभी मनुष्योंमें ऐसे व्यक्तिकी छाप पड़ती है। यह समझमें आ जाय तो स्वार्थका त्याग करके ही चेष्टा होगी। स्वार्थका त्याग करके अपनेको त्यागी मानना भी कलंक है। आपकी चीज मेरे पास रखी हो, वह मैं वापस दूँ, मुझे इसमें क्या अभिमान मानना चाहिये। जो इस प्रकार निरभिमान होकर त्याग करे, उसकी क्या बात कही जाय।

इस काममें भगवान् तुम्हें प्रेमकी दृष्टिसे देखते हैं। यह समझमें

आ जाय तो उसके विह्वलता होती है। प्रभु मेरे इस कामसे प्रसन्न हैं। ऐसा अपने मनमें भाव हो तो यह भी एक तरहका स्वार्थ है, इसका भी त्याग हो जाना चाहिये। मनुष्यको तो अपना कर्तव्यपालन करना है। इसमें बड़ाई न समझे। कर्तव्यपालन न करना मनुष्यता नहीं है। संसारमें मेरा आदर हो, यह इच्छा नहीं रखे। निष्काम कर्मसे स्वाभाविक ही शान्ति, प्रसन्नता रहती है, परन्तु शान्ति, प्रसन्नताकी इच्छा नहीं रखे, यह इच्छा भी सूक्ष्म कामना है। कोई भी कामना नहीं रखे, मनुष्यका कर्तव्य समझकर करे। मैंने बहुत महत्त्वका काम किया है, ऐसा काम करके भी उसके मनमें यह भाव नहीं आवे तभी निष्काम कर्म है। यदि भाव आ जाय तो नीचे दर्जेका है। जैसे जाजलि ऋषिको अभिमान आनेसे कैसी दशा हुई! अच्छा काम करके यह न समझे कि मैंने महत्त्वका काम कर डाला, न यह समझे कि मैंने अच्छा काम किया है। कोई फलकी कामनाके लिये काम नहीं करना है। मनुष्य होनेके नाते काम करना कर्तव्य है। फलकी कामना ही नहीं करे, वह निष्काम कर्म है।

सेवक स्वामीकी प्रीतिके लिये काम करता है, निष्काम-भावसे सेवा करता है तो स्वामीपर उसकी अधिक छाप पड़ती है। स्वामी यही देखता है कि इसको क्या देकर सन्तुष्ट करूँ, इसी तरह भगवान्‌पर छाप पड़ती है।

पुत्र अपने माता-पिताकी सेवा करता है तो कौन-सी बड़ी बात है। इसी प्रकार निःस्वार्थभावसे सेवा करे।

जो कुछ भी क्रिया करता है—दलाली, आढत, क्रिया बदलनेकी आवश्यकता नहीं है, केवल भाव बदल दे।

शिक्षाप्रद पत्र

बाल विधवाके विवाहके विषयमें बात यह है कि पुनः उसका दान नहीं हो सकता। शास्त्रोंमें भी जहाँ कहीं पति मरनेके बाद कन्याके सम्बन्धका प्रसंग आता है। वहाँ अधिकांशमें वाग्दान (सगाई)-के बाद पति मर जाय तो उसके देवरके साथ विवाह करनेका आता है (मनु० ९। ६९) अथवा देवर आदिकी तजवीज न लगे तो फिर दूसरेसे भी किया जा सकता है। जहाँ कहीं विवाह करनेके बाद पति मरनेके अनन्तर विवाहका प्रसंग आता है, वह शूद्रके विषयमें समझना चाहिये।

विवाहके दूसरे दिनसे लेकर पतिके साथ सहवास न हो इसके पूर्व ही पतिकी मृत्युके बाद जो दूसरे पतिके साथ सम्बन्ध जोड़नेकी कहीं-कहीं स्मृतिमें बात आती है, वह शूद्रोंके लिये समझनी चाहिये। यदि सभी जातियोंके लिये ऐसा मान लिया जाय तथा उसे विवाह मान लिया जाय तो फिर विधवाके लिये जो घोर विरोध (निषेध) लिखा है, उसके साथ विरोध होता है। पतिके मरनेके एक दिन बाद भी उसके विवाह करनेका किसी रूपमें भी हक नहीं है। यदि कोई करे तो अनुचित है।

यदि हलदात या बानके बाद भी विवाह-संस्कारके पूर्व वरकी मृत्यु हो जाय तो ऐसी परिस्थितिमें इसके सुयोग्य वरके साथ उसी लग्नमें तजवीज न बैठे तो दो-चार दिनके पीछे करनेमें कोई आपत्ति नहीं है।

विधवाओंको ब्रह्मचर्यसे रहना चाहिये, यही उनका धर्म है।

पुनर्विवाह उनके लिये विहित नहीं है। यदि कोई अपना धर्म-पालन न कर सके, ऐसी अवस्थामें किसीके साथ नाता जोड़ ले तो धर्म नहीं कहा जा सकता, वह भी पाप ही है। गुप्त व्यभिचार और भ्रूण हत्याकी अपेक्षा इसे छोटा पाप कहा जा सकता है। मनुष्योंको धर्मका प्रचार करना चाहिये। पाप-कर्म प्रचारका विषय नहीं है, चाहे वह छोटा ही क्यों न हो।

× × ×

राजा चित्रकेतुके पुत्रकी मृत्यु हुई थी—तब महर्षिने उसकी आत्माको बुलाकर यह उपदेश दिया था कि हे राजन्! तुम किसलिये शोक करते हो! कौन किसका पिता है—और कौन किसका पुत्र है। बहुत बार तुम हमारे पुत्र तथा बहुत बार मैं तुम्हारा पुत्र बन चुका हूँ। पिता और पुत्र, शत्रु और मित्रका सम्बन्ध प्रारब्धसे होता है तथा राग-द्वेषके कारण सुख-दुःख हुआ करता है। इनका संयोग-वियोग अनिवार्य है और मायामात्र है, इसलिये शोक नहीं करना चाहिये—इत्यादि बातोंसे उपदेश दिया गया है। उसको स्मरण करके शोक नहीं करना चाहिये तथा अभिमन्युके मरनेके बाद भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने पाण्डवोंको उपदेश दिया है, उसको विचारकर शोकका त्याग करना चाहिये और आप-जैसे समझदार भगवान्के प्रेमी भक्तोंको तो शोक कभी होना ही नहीं चाहिये। रामायणमें श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—

खल कामादि निकट नहिं जाहीं। बसइ भगति जाके उर माहीं॥
राम भगति मनि उर बस जाकें। दुख लवलेस न सपनेहुँ ताकें॥

इसलिये आपको भी शोक नहीं करना चाहिये। आप श्रीभगवान्के भक्त हैं और संसार-नाटकके भगवान् नट हैं। जो कुछ होता है भगवान्की आज्ञासे ही होता है, बिना आज्ञा कुछ नहीं होता तथा

नटरूप भगवान् इस संसाररूपी नाटकको कर रहे हैं, फिर चिन्ता क्यों। भगवान्ने गीतामें भी कहा है—

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः॥ (२।११)

हे अर्जुन! तू न शोक करनेयोग्यके लिये शोक करता है और पण्डितोंके-से वचन कहता है, किन्तु पण्डितजन जिनके प्राण चले गये हैं उनके लिये और जिनके प्राण नहीं गये हैं—उनके लिये शोक नहीं करते। इससे यह सिद्ध हुआ कि चिन्ता करनेयोग्य कुछ भी नहीं है, क्योंकि शरीर नाशवान् है (गीता २।२८)। आत्मा नित्य है (गीता २।२०, २४, २५), इनका संयोग-वियोग खोल बदलनेके समान या यों कहिये वस्त्र बदलनेके समान है (गीता २।२२) फिर दुःख किस बातका है। बिना समझे मूर्खलोग शोक करते हैं, समझदार नहीं। इसलिये आपको इन सब बातोंको विचारकर चिन्ता-शोक बिलकुल नहीं करना चाहिये और अपने समयको अमूल्य समझकर रात-दिन श्रीभगवान्का भजन, ध्यान, सेवा आदि सत्कर्मरूप अमोलक काममें बिताना चाहिये। भगवान् आपको चेतावनी दे रहे हैं। आप जल्दी चेत करें। इस असार संसारके मोहजालमें फँसकर अपने कर्तव्यको न भूलें। आपको अपना धर्म यानी कर्तव्य नहीं भूलना चाहिये और धैर्य रखना चाहिये। इन सबकी आपत्तिकालमें परीक्षा होती है। श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—

धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परिखिअहिं चारी॥

× × ×

लिखी बाँकुड़ासे जयदेवका प्रेमसहित राम-राम। आपने लिखा कि भजन बहुत कम होता है, भजन ज्यादा होनेका उपाय लिखें। भगवान्में प्रेम होनेसे भजन ज्यादा होता है, जिनका रुपयोंमें प्रेम है,

प्रेम है, उनके द्वारा रुपयोंका भजन होता है, इसी प्रकार भगवान्‌में प्रेम होनेसे भगवान्‌का भजन हो सकता है और कोई उपाय नहीं दीखता। भजन करनेसे बहुत लाभ है। ऐसा समझकर बहुत चेष्टाके साथ भजनका अभ्यास करो तो अभ्यास बढ़कर भजन होने लग जायगा, किन्तु बिना प्रेम भजन होना मुश्किल है। भगवान्‌में अनन्य प्रेम होनेका उपाय पूछा सो भगवान्‌का प्रभाव जाननेसे भगवान्‌में प्रेम होता है। रुपयोंका प्रभाव जाननेसे रुपयोंमें प्रेम होता है। बालकका रुपयोंमें प्रेम नहीं होता; क्योंकि बालक रुपयोंका मूल्य नहीं जानता। इस प्रकार भगवान्‌का प्रभाव जो नहीं जानता, उसका भगवान्‌में प्रेम नहीं होता। वही बालकके समान है। भगवान्‌का प्रभाव माननेवालोंका संग करनेसे प्रभाव जाना जा सकता है। आपने पूछा कि गीता कण्ठस्थ करनेमें अधिक लाभ है या भगवान्‌के नामका जप करनेमें अधिक लाभ है। दोनोंमें कौन-सी बात श्रेष्ठ है? दोनों ही बात श्रेष्ठ है, श्रीगीताजीका अभ्यास और भी अच्छा है। श्रीगीताजी अर्थसहित याद करनी चाहिये, यदि अर्थसहित नहीं होवे तो भी भजनसे श्रेष्ठ है। यदि ध्यानसहित भजन ही बने, यह श्रीगीताजीके अभ्याससे श्रेष्ठ है। आपने लिखा कि निष्कामभावसे भगवान्‌की शरण किस तरह हुआ जाय, वह उपाय लिखना चाहिये। भगवान्‌की इच्छानुसार चलनेसे शरण होता है या श्रीगीतामें लिखे अनुसार करनेसे शरण होता है। वैसे ही करना चाहिये। उसीका नाम शरण है तथा भगवान्‌से कुछ माँग नहीं करे। भगवान्‌की प्रसन्नतामें प्रसन्न रहे। संशयकी परिस्थिति भगवान् दें तो भी नहीं ले, इसीका नाम निष्काम शरण है। भजन, ध्यान, सत्संग करनेसे और गीताजीके अनुसार चलनेसे ही शरण हो जाता है।

लिखी बाँकुड़ासे जयदेवका प्रेमसहित राम-राम बंचना। आपके द्वारा पहलेसे बहुत कम सत्संग हो रहा है, इस कारण मेरी

समझसे आपका साधन भी कम हो रहा होगा। श्रीगीताजीका अभ्यास भी कम हो गया होगा। आप क्या विचार कर रहे हैं! संसारसे उद्धार होनेके लिये आपने क्या उपाय सोचा है! शरीर शान्त होनेके बाद एक भगवान् बिना आपका कौन सहायक है! आपको उसे एक पल भी नहीं छोड़ना चाहिये, बिना सत्संग, बिना भजन, ध्यानके साधन होना बहुत कठिन है, इसलिये लाख काम छोड़कर भी सत्संगमें जाना चाहिये। सत्संगमें जानेसे बहुत अच्छे पुरुषोंका दर्शन होता है। इससे भी बहुत लाभ है। आजकल गृहस्थोंमें भी साधुओंसे बढ़कर बहुत-से अच्छे पुरुष हो गये हैं। सत्संगमें जानेसे कुछ मानहानि भी नहीं होती, यदि मानहानि होवे तो भी सत्संगमें जाना ही लाभदायक है। मान, बड़ाई कोई चाहे तो भजन, ध्यान, सत्संगसे जैसी होती है, ऐसी किसी और साधनसे नहीं होती, यद्यपि मान-बड़ाई भगवान्‌की प्राप्तिमें बाधा डालनेवाली वस्तु है। मान-बड़ाईमें आसक्ति होनेके कारण मान-बड़ाई नहीं छूटती। सत्संगके प्रतापसे वह भी छूट जाय तो आत्माका उद्धार भी तुरन्त हो जाय। किसीका धनमें भी प्रेम हो तो भजन, ध्यान, सत्संगसे वैराग्य होकर मुक्ति हो जाती है। सार बात तो यह है कि भजन, ध्यान, सत्संग निष्कामभावसे ही करना चाहिये। मान, बड़ाई, धनको लात मारकर भगवान्‌से प्रेम करना चाहिये। स्वर्ग और ब्रह्मलोकतकको लात मारकर भगवान्‌की प्राप्ति होती है, इसलिये जिस प्रकार भगवान् मिलें, वही करना चाहिये। ऐसा अवसर पाकर भी लाभ नहीं उठायेंगे तो फिर कब उठायेंगे।

× × ×

लिखी बाँकुड़ासे श्रीद्वारकादासजीसे जयदेवका प्रेमसहित राम-राम बंचना। चिट्ठी आपकी मधुपुरसे भेजी हुई मिली। चिट्ठी

बहुत आवश्यक काम हो तब देनी चाहिये, क्योंकि आजकल बहुत पत्रोंका उत्तर देना पड़ता है, जिसके कारण उत्तर नहीं दे पाता। साधन तेज होनेकी बात पूछी है। श्रीपरमात्मदेवकी शरण होकर साधन तेज करना चाहिये। साधन तेज होवे, तब तो श्रीपरमात्मदेवकी शरण हुए, अन्यथा झूठा आसरा लिया। जैसे कई लोग साधन तो करते नहीं, फालतू कहते हैं कि हमारे तो भगवान्‌का आसरा है। खैर इस प्रकार करनेसे भी कुछ लाभ तो है। कथनमात्र भी भगवान्‌का आसरा नहीं लेनेवालेकी अपेक्षा तो अच्छा ही है, किन्तु इतने मात्रसे काम नहीं चलेगा। जैसे कोई कह दे कि हमारे तो सत्संगका आसरा है, किन्तु सत्संगकी बात मानता नहीं तथा सत्संगसे उद्धार होता है, ऐसा तो मानता है, किन्तु साधन करता नहीं। केवल संगसे उद्धार हो जायगा, ऐसा समझकर जो साधन ढीला कर देते हैं, उन्हें बहुत कठिनाई है। इस प्रकार उद्धार हो जाय तो फिर सत्संगका आसरा तो भजन, ध्यान, साधनमें बाधक हुआ। सत्संगसे साधन तेज होना चाहिये। साधन तेज होवे तब तो सत्संगका आसरा अच्छा है, अन्यथा झूठा आसरा है। सत्संगके आसरेका फल भजन, ध्यान, साधन कम करनेवाला नहीं है। जैसे भजनके आश्रयसे पाप नष्ट होते हैं, किन्तु वह पाप करानेवाला नहीं है। कोई भूलसे ही ऐसा विचारकर पाप करने लग जाय कि मैं फिर भजन करके पापोंका नाश कर लूँगा। इस तरह समझना बहुत भारी भूल है। इस उद्देश्यसे पाप करनेवालेके पाप भोगनेसे ही नष्ट होते हैं। भगवान्‌की कृपाकी बात तो न्यारी है। इस प्रकार भजनके आसरेसे जो पापका नाश करना चाहता है, उसने भजनका प्रभाव नहीं जाना। भजन तो पापको नाश करनेवाला है, भजन पाप बढ़ानेवाला नहीं है। इस प्रकार कोई

सत्संगका आसरा भूलसे ले लेवे और भजन, ध्यानका साधन कम कर देवे तो उसने सत्संगके आसरेका मर्म नहीं समझा। इसी प्रकार भगवान्‌की शरणके विषयमें भी समझना चाहिये।

× × ×

लिखी जयदेवका प्रेमसहित राम-राम बंचना। मनमें हर समय प्रसन्नता माननी चाहिये। बिना अनुभव हुए ही हर समय, सब जगह एक आनन्दमयकी भावनासे दर्शन करना चाहिये। हर समय सब जगह आनन्द माननेसे चित्तमें असली आनन्द हो सकता है। चित्त स्थिर भी हो सकता है।

आलस्य, प्रमाद, दुराचार, दुर्गुण, निन्दा आदिको मृत्युके समान समझकर सदाचार, सत्संग, संयम, साधनको अमृतके समान समझकर इनके पालनके लिये जी तोड़ परिश्रम करना चाहिये। केवल भजन, ध्यानके निष्काम, निरन्तर साधनसे ऊपर लिखे अनुसार सारी बात बिना परिश्रम होनेकी आशा है, इसलिये साधनपर विशेष जोर देना चाहिये।

भजन, ध्यान करते हुए काम करनेका अभ्यास डालना चाहिये। शरीरको एक मिनट भी निकम्मा नहीं रखना चाहिये। आराम छोड़कर काम करना चाहिये। हो सके तो दूसरोंका उपकार भी शरीरसे करना चाहिये। सदाचार सद्गुणोंका उपार्जन करना चाहिये।

श्रीलक्ष्मीनारायणजी भिवानी

आपके पूछे हुए गीताविषयक आठ प्रश्नोंका उत्तर क्रमशः यथासाध्य लिख रहा हूँ। इनको पढ़कर और कुछ पूछना हो तो लिखनेकी कृपा करियेगा।

१. गीता वेदोंको जैसे मानना चाहिये ठीक वैसे ही मानती

है। गीताका वेदोंसे कुछ भी विरोध नहीं है। गीता २। ४२, ४५—५३ में जो कथन है, वह वेदोक्त सकाम कर्मके विषयोंमें है। इसके लिये अंतमें वेद भी स्वयं स्वीकार करता है कि मोक्षके लिये मनुष्यको निष्काम होना चाहिये। वेदोक्त ज्ञानकाण्डकी गीता मुक्त कंठसे प्रशंसा करती है। देखें १३। ४

२. गीता वर्णाश्रमधर्मको पूर्णरूपसे मानती है और अपने-अपने वर्णाश्रमानुसार स्वधर्माचरण करनेके लिये खूब जोर देती है। इतना ही नहीं, गीता १८। ४८में अपने दोषयुक्त स्वधर्मको भी छोड़नेके लिये नहीं कहती है। गीता १८। ६६में जो कथन है, वह स्वधर्मको स्वरूपसे छोड़नेके लिये नहीं है। सम्पूर्ण धर्मोंका आश्रय छोड़कर एक परमात्माका ही आश्रय लेनेके लिये कहना है। दूसरा अर्थ करनेसे गीताके पूर्वापरकी संगति कुछ भी नहीं लगा सकेंगे। निष्काम भावसे अपना-अपना धर्म पालन करते-करते परमात्माकी शरण होनेसे सबको परमगति मिल सकती है। यह तो वर्णधर्मका अधिक महत्त्व है, इसमें विरोधकी क्या बात है। देखें गीता १८। ४६—५६

३. गीताशास्त्रमें मोक्षके लिये दो मार्ग बतलाये गये हैं—एक ज्ञानयोग, दूसरा निष्काम कर्मयोग। इनमें जो जिस साधनका अधिकारी है, उसके लिये वही उपयोगी है। अतः इस भावको भली प्रकार समझ लेनेके बाद आपको पूछने लायक कोई बात बाकी नहीं रह जाती। स्वरूपसे कर्मोंका त्याग तो गीता किसी अवस्थामें भी नहीं बतलाती। इसका खुलासा देखनेके लिये आप गोबिन्दभवन-द्वारा प्रकाशित गीताकी भूमिका देख सकते हैं तथा कल्याणके दसवें-ग्यारहवें अङ्कमें मेरा लेख देखना चाहिये।

४. गीता मूर्तिपूजाको मानती है एवं सगुण-निर्गुण और

साकार-निराकार भगवान्‌के सभी प्रकारके स्वरूपोंकी उपासनाका प्रतिपादन करती है। अतः इसमें कोई विरोध प्रतीत नहीं होता।

५. श्रीकृष्ण साक्षात् अज, अविनाशी, परब्रह्म परमात्मा स्वयं अपनी मायासे सगुणरूपमें प्रकट हुए थे। (गीता ४। ६)। अतः उनका अपने प्रति ब्रह्मरूपसे कथन करना पूर्ण युक्तियुक्त था। उनका शरीर दो भुजावाला था। उन्होंने अर्जुनपर अनुग्रह करके उसे अपना विराट् स्वरूप और चार भुजावाला देवरूप दिखाया था।

६. अर्जुन अवश्य मुमुक्षु था, अर्जुनको भगवद् उपदेशसे ज्ञान हुआ और वह परमपदको प्राप्त हुआ, इसे गीता स्पष्ट स्वीकार करती है। (गीता १८। ७३)

७. श्रीकृष्णजीने अर्जुनको दिव्यदृष्टि देकर जो अपना ऐश्वर्ययुक्त विराट् स्वरूप दिखलाया, वह हालके जमानेका सम्मोहन नहीं था, वह ऐश्वर्यशक्तिका प्रभाव था, जिसको दिखानेवाला ईश्वरको छोड़कर मेरी समझमें दूसरा कोई नहीं है। वह परमात्मा यदि आवश्यकता समझें तो अपने अनन्य भक्तको अब भी चाहे जैसा रूप दिखा सकते हैं। (गीता ११। ५४) इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

गजलगीता

प्रथमहिं गुरुको शीश नवाऊँ। हरिचरणोंमें ध्यान लगाऊँ॥ १ ॥
गजल सुनाऊँ अद्भुत यार। धारणसे हो बेड़ा पार॥ २ ॥
अर्जुन कहै सुनो भगवाना। अपने रूप बताये नाना॥ ३ ॥
उनका मैं कछु भेद न जाना। किरपा कर फिर कहो सुजाना॥ ४ ॥
जो कोई तुमको नित ध्यावे। भक्तिभावसे चित्त लगावे॥ ५ ॥
रात दिवस तुमरे गुण गावे। तुमसे दूजा मन नहिं भावे॥ ६ ॥
तुमरा नाम जपे दिन रात। और करै नहिं दूजी बात॥ ७ ॥
दूजा निराकारको ध्यावे। अक्षर अलख अनादि बतावे॥ ८ ॥
दोनों ध्यान लगानेवाला। उनमें कुण उत्तम नँदलाला॥ ९ ॥
अर्जुनसे बोले भगवान्। सुन प्यारे कछु देकर ध्यान॥ १० ॥
मेरा नाम जपै जपवावे। नेत्रोंमें प्रेमाश्रू छावे॥ ११ ॥
मुझ बिनु और कछू नहिं चावे। रात दिवस मेरा गुण गावे॥ १२ ॥
सुनकर मेरा नामोच्चार। उठै रोम तन बारम्बार॥ १३ ॥
जिनका क्षण टूटै नहिं तार। उनकी श्रद्धा अटल अपार॥ १४ ॥
मुझमें जुड़कर ध्यान लगावे। ध्यान समय विह्वल हो जावे॥ १५ ॥
कंठ रुके बोला नहिं जावे। मन बुधि मेरे माँहि समावे॥ १६ ॥
लज्जा भय रु बिसारे मान। अपना रहे न तनका ज्ञान॥ १७ ॥
ऐसे जो मन ध्यान लगावे। सो योगिनमें श्रेष्ठ कहावे॥ १८ ॥
जो कोइ ध्यावे निर्गुण रूप। पूर्ण ब्रह्म अरु अचल अनूप॥ १९ ॥
निराकार सब बेद बतावे। मन बुद्धी जहँ थाह न पावे॥ २० ॥
जिसका कबहुँ न होवे नाश। ब्यापक सबमें ज्यों आकाश॥ २१ ॥
अटल अनादी आनन्दघन। जाने बिरला योगीजन॥ २२ ॥
ऐसा करे निरन्तर ध्यान। सबको समझे एक समान॥ २३ ॥
मन इन्द्रिय अपने वश राखे। विषयनके सुख कबहुँ न चाखे॥ २४ ॥

सब जीवोंके हितमें रत। ऐसा उनका सच्चा मत॥ २५॥
वह भी मेरे ही को पाते। निश्चय परमा गतिको जाते॥ २६॥
फल दोनोंका एक समान। किन्तु कठिन है निर्गुण ध्यान॥ २७॥
जबतक है मनमें अभिमान। तबतक होना मुश्किल ज्ञान॥ २८॥
जिनका है निर्गुणमें प्रेम। उनका दुर्घट साधन नेम॥ २९॥
मन टिकनेको नहीं अधार। इससे साधन कठिन अपार॥ ३०॥
सगुण ब्रह्मका सुगम उपाय। सो मैं तुझको दिया बताय॥ ३१॥
यज्ञ दानादि कर्म अपारा। मेरे अर्पण कर कर सारा॥ ३२॥
अटल लगावे मेरा ध्यान। समझे मुझको प्राण समान॥ ३३॥
सब दुनियाँसे तोड़े प्रीत। मुझको समझे अपना मीत॥ ३४॥
प्रेममग्न हो अती अपार। समझे यह संसार असार॥ ३५॥
जिसका मन नित मुझमें यार। उनसे करता मैं अति प्यार॥ ३६॥
केवट बनकर नाव चलाऊँ। भवसागरके पार लगाऊँ॥ ३७॥
यह है सबसे उत्तम ज्ञान। इससे तूँ कर मेरा ध्यान॥ ३८॥
फिर होवेगा मोहि समान। यह कहना मम सच्चा जान॥ ३९॥
जो चाले इसके अनुसार। वह भी हो भवसागर पार॥ ४०॥

उड़ जायगा रे हंस अकेला, दिन दोयका दर्शन-मेला ॥ टेक ॥

राजा भी जायगा, जोगी भी जायगा, गुरु भी जायगा चेला ॥ १ ॥

माता-पिता भाई-बन्धु भी जायेंगे, और रुपयोंका थैला ॥ २ ॥

तन भी जायगा, मन भी जायगा, तू क्यों भया है गैला ॥ ३ ॥

तू भी जायगा, तेरा भी जायगा, यह सब मायाका खेला ॥ ४ ॥

कोड़ी रे कोड़ी माया जोड़ी, संग चलेगा न अधेला ॥ ५ ॥

साथी रे साथी तेरे पार उतर गये, तू क्यों रहा अकेला ॥ ६ ॥

राम-नाम निष्काम रटो नर, बीती जात है बेला ॥ ७ ॥